कौल-कल्पतरु गण्डी

वर्ष ५६ श्रीमहा-लक्ष्म्यै नमः अङ्क ७

पर्व-पत्र

- **कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा, शनिवार** (१४ अक्टूबर, २०००) : अशून्य-शयन द्वितीया-व्रत। **अक्षय धन, दाम्पत्य, सुख-प्राप्ति हेतु श्रीलक्ष्मी-युत श्रीविष्णु-पर्यङ्क का ध्यान-पूजन** करे।
- **कार्तिक कृष्णा तृतीया, सोमवार** (१६ अक्टूबर, २०००) : भद्रा दिन ११.४५ तक। **करक (करवा) श्रीगणेश-चतुर्थी-व्रत।** (चन्द्रोदय रात्रि ७.५६)। **चन्द्र-अर्घ्य-दान।** सर्वार्थ- सिद्धि-योग
- **कार्तिक कृष्णा सप्तमी, वृहस्पतिवार** (१९ अक्टूबर, २०००) : श्रीराधा-अष्टमी।
- **कार्तिक कृष्णा द्वादशी, मङ्गलवार** (२४ अक्टूबर, २०००) : भौम-प्रदोष त्रयोदशी-व्रत। **श्री धनवन्तरि-जयन्ती। कामेश्वरी-जयन्ती-त्रयोदशी। सायं-काल यम-राज के लिए दीप-दान।**
- **कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी, बुधवार** (२५ अक्टूबर, २०००) : नरक-चतुर्दशी। 'यम' और 'भीष्म' को जल-दान। **सन्ध्या-समय घर के बाहर चार बत्तियों का 'दीपक'** जलाए।
- **कार्तिक चतुर्दशी-अमावास्या, वृहस्पतिवार** (२६ अक्टूबर, २०००) : **दीपावली।** प्रातः-काल यम तर्पण, श्रीहनुमत् दर्शन। **सायं-काल दीप-दान, श्रीलक्ष्मी-इन्द्र-कुबेर** आदि **पूजा।** मध्य-रात्रि में **श्रीमहा-काली-ध्यान-पूजा।**
- **कार्तिक अमावास्या शुक्रवार** (२७ अक्टूबर, २०००) : स्नान-दान-व्रत। अश्वत्थ-मूल में **भगवान् विष्णु का ध्यान** कर पूजन-प्रदक्षिणा।
- **कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा, शनिवार** (२८ अक्टूबर, २०००) : अन्न-कूट। **गोवर्धन-पूजा।** मध्याह्न-काल में **प्रतिपदा-युक्ता भ्रातृ-द्वितीया, यम-द्वितीया।**
- **कार्तिक शुक्ला चतुर्थी, मङ्गलवार** (३१ अक्टूबर, २०००) वैनायकी **श्रीगणेश-चतुर्थी-व्रत। त्रि-दिवसीय श्रीसूर्य-षष्ठी-व्रत** प्रारम्भ।
- **कार्तिक शुक्ला पञ्चमी, बुधवार** (१ नवम्बर, २०००) : **श्रीसूर्य-षष्ठी-व्रत का दूसरा दिन।** जैनों की **ज्ञान-पञ्चमी।**
- **कार्तिक शुक्ला षष्ठी, वृहस्पतिवार** (२ नवम्बर, २०००) : श्रीसूर्य-षष्ठी-व्रत का तीसरा दिन, श्रीस्कन्द- षष्ठी-व्रत।
- **कार्तिक शुक्ला सप्तमी, शुक्रवार** (३ नवम्बर, २०००) : श्रीसूर्य-षष्ठी-व्रत-पारण।
- **कार्तिक शुक्ला अष्टमी, शनिवार** (४ नवम्बर, २०००) : श्रीगोप-अष्टमी।
- **कार्तिक शुक्ला नवमी, रविवार** (५ नवम्बर, २०००) : अक्षय नवमी।
- **कार्तिक शुक्ला एकादशी, मङ्गलवार** (७ नवम्बर, २०००) : प्रबोधिनी एकादशी-व्रत। जगद्धात्री-पूजा।
- **कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी, वृहस्पतिवार** (९ नवम्बर, २०००) : प्रदोष-व्रत।
- **कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी, शुक्रवार** (१० नवम्बर, २०००) : वैकुण्ठ-चतुर्दशी-व्रत। महा-विष्णु-पूजा।
- **कार्तिक पूर्णिमा, शनिवार** (११ नवम्बर, २०००) : स्नान-दान-व्रत की पूर्णिमा। कार्त्तिकेय- दर्शन-ध्यान। श्रीगुरुनानकदेव-जयन्ती।

* * *

'दीपावली' की हार्दिक शुभ-कामनाएँ

—ऋतशील शर्मा

'ज्योति' की पूजा—'दीपावली'

'दीपावली'-पर्व की मूल-पूजा-**'ज्योति की पूजा'** है। **पूर्ण-पर-ब्रह्म** परमात्मा की अग्नि-शिखा (दीप-शिखा) के रूप में **'आद्या'** हैं। **'पर-ब्रह्म'** की अन्य दीप-शिखाएँ **त्रि-देवी शक्तियों— 'महा-लक्ष्मी-महा-काली-महा-सरस्वती', 'यक्ष-कुबेर- गणेश'** आदि के रूप में हैं। इस प्रकार **'दीपावली-पर्व'** में **'ज्योति-पूजन'** की ही प्रधानता है।

तन्त्रों में **'ज्योति'**-रूपा **श्रीज्वाला-मुखी** का वर्णन एक **'विद्या'** के रूप में है। उदाहरण के रूप में प्रस्तुत **'दीपावली'**-अङ्क में **'श्रीज्वाला-मुखी-सहस्र-नाम'** प्रस्तुत है। आशा है, पाठक-बन्धु **'दीपावली'**-महा-पर्व पर इसका पाठ आदि कर विशेष अनुभूतियाँ प्राप्त करेंगे।

—सम्पादक

- **सम्पादक**
  रमादत्त शुक्ल, ऋतशील शर्मा
- **पता :**
  चण्डी-धाम
  अलोपीदेवी मार्ग, प्रयाग-राज
  दूरभाष : (०५३२) ५०२७८३
- वार्षिक अनुदान : रु० १२०
- **प्रकाशक :**
  परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान,
  प्रयाग-राज-२११००६

'कौल-कल्पतरु' चण्डी
आश्विन, 'विजय' सं० २०५७ वि०-अक्टूबर, २०००
'श्रीदीपावली'-अङ्क

इस अङ्क में

पर्व-पत्र — आवरण पृष्ठ २
- **'दीपावली'-महा-पर्व के जानने योग्य महत्त्व-पूर्ण तथ्य** — २२६
- **श्रीमहा-लक्ष्मी की सिद्ध आरती** — २२८
- **श्रीमहा-लक्ष्मी-सप्त-विंशाक्षर मन्त्र-साधना** — २२९
- **श्रीज्वाला-मुखी-सहस्र-नाम-स्तोत्र** — २३४
- **श्रीजगद्धात्री-पूजा** — २३९
- **साधक का संवाद** — २४५

'दीपावली'-महोत्सव — आवरण पृष्ठ ३

सर्व-शक्ति-प्रदायिनी माता लक्ष्मी

कीर्तिर्मतिः स्मृति-गती करुणा दया त्वम्।
श्रद्धा धृतिश्च वसुधा कमला जया च॥
पुष्टिः कलाऽथ विजया गिरिजा जया त्वम्।
तुष्टिः प्रभा त्वमसि बुद्धिरुमा रमा च॥

उक्त पद्य में **माता कमला (लक्ष्मी)** का नाम **वसुधा** और **जया** के बीच में आया है। इसका तात्पर्य यह है कि **माता लक्ष्मी** पृथिवी पर विजय प्रदान करनेवाली हैं। इनका सेवक अर्थात् **माता लक्ष्मी** का भक्त **वसुधा (पृथिवी)** और **जय—** इन दोनों को प्राप्त करता है। एक हाथ से **'वसु'** अर्थात् धन और दूसरे हाथ से **'जया' (विजयिनी शक्ति)** को प्राप्त करता है। इसीलिए **माता लक्ष्मी** जगत् के प्राणियों के लिए **सर्व-शक्ति-प्रदायिनी** कही गई हैं। अतः सभी को वर्तमान् **'विजय'**-संवत् २०५७ वि० के **'दीपावली'**-महा-पर्व के पावन अवसर पर **माता लक्ष्मी की विधिवत् उपासना** कर **अधिकाधिक शक्ति-प्राप्ति** करना चाहिए।

—ऋतशील शर्मा

'दीपावली'-महा-पर्व के जानने योग्य महत्त्व-पूर्ण तथ्य

❖ पं०कृपाशङ्कर दुबे शास्त्री, कानपुर-२७ (उ०प्र०)

'तम'-भाव के ह्रास तथा शुद्ध **'रज'**-भाव की वृद्धि हेतु **भगवती लक्ष्मी** के शुभागमन के उपलक्ष्य में **'दीपावली'**-महोत्सव मनाया जाता है। इस दिन **'दीप'**-प्रकाश एवं **'अग्नि'- क्रीड़ा** करने का आदेश हमारे दूर-दर्शी ऋषियों ने प्रस्तुत किया है।

कार्तिक अमावास्या को **'दीपावली'**-पर्व सम्पन्न होता है। इस दिन **'सूर्य'** का निवास जब **'कन्या-तुला'**-राशि में होता है, तब **'सूर्य'**-प्रकाश अर्थात् **'सौर'**-प्रकाश मलीन रहता है। रात्रि में **अमावास्या** के कारण **चन्द्रमा की ज्योति** भी प्राप्त नहीं होती है।

आषाढ़ शुक्ल पक्ष एकादशी से **कार्तिक शुक्ल एकादशी** का समय **'चतुर्मास'** कहलाता है। यह काल **'देवताओं का शयन-काल'** माना गया है। इन दिनों घरेलू शुभ-कार्य विवाह आदि नहीं किए जाते हैं। **व्रत, पूजा-पाठ** एवं **नियमों** का विशेष रूप में पालन करना होता है। चार मास की वर्षा के कारण प्रकृति की प्राण-मयी **'अग्नि'** निष्प्रभ रहती है, जिसकी पूर्ति बाह्य रूप में **'दीपक'** जलाकर एवं आन्तरिक रूप में **व्रत, पूजा** आदि के रूप में की जाती है।

इस प्रकार **'दीपावली'**-पर्व का महोत्सव यह सूचित करता है कि **'अज्ञान'-रूपी अन्धकार को 'ज्ञान'-रूपी 'दीपक' जलाकर हटाना चाहिए।**

'दीपावली'-पर्व 'विजय' संवत् २०५७ वि० के महत्व-पूर्ण तथ्य इस प्रकार हैं—

(१) ज्योतिष एवं धर्म-शास्त्र के अनुसार **'प्रदोष'— 'निशीथ'-व्यापिनी कार्त्तिक कृष्ण पक्ष की अमावास्या** ही **'दीपावली'** है। अतः **वृहस्पतिवार २६ अक्टूबर, २००० को 'दीपावली'-महा-पर्व** है।

(२) **'दीपावली'-महा-पर्व** का पूजन **'वृष'** अथवा **'सिंह'** के **स्थिर लग्न** में सम्पन्न करना श्रेयष्कर होता है। **वृहस्पतिवार २६ अक्टूबर २०००** को **'वृष'-लग्न—** सायं ६ बजकर, २६ मिनट से रात्रि ८ बजकर, २३ मिनट तक है। **'सिंह'-लग्न—** रात्रि १२ बजकर, ५४ मिनट के पश्चात से रात्रि ३ बजकर, ८ मिनट तक है।

(३) **'दीपावली'**-पर्व के दिन **भगवान् गणेश, लक्ष्मी, इन्द्र, कुबेर की उपासना** करना चाहिए।

(४) **भगवान् गणेश की मूर्त्ति** को सदैव **भगवती महा-लक्ष्मी की मूर्त्ति** के दाहिने रखना चाहिए।

(५) **'लक्ष्मी'-पूजन** में **श्वेत आसन, श्वेत वस्त्र, आँवला, बेल, कमल पुष्प, केशर** का प्रयोग श्रेयष्कर होता है।

(६) **'दीपावली'**-महा-पर्व के दिन **श्रीगणपति सहस्र-नाम, श्रीमहा-लक्ष्मी सहस्र-नाम, श्री-सूक्त,**

कनक-धारा-स्तोत्र, धनदा कवच आदि के पाठ का विशेष महत्त्व है।

(७) **घृत, सिन्दूर, अष्ट-गन्ध, चन्दन** से निम्न-लिखित **यन्त्र** दीवाल, कोषागार पर **अनार** अथवा **बेल की लेखनी** से **'दीपावली'-पूजन** के पश्चात लिखकर **पूजन** करना श्रेयष्कर होता है।

८	१	६
३	५	७
४	९	२

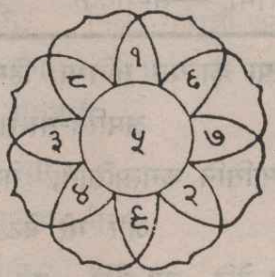

(८) **'दीपावली'-पूजन** की समाप्ति के पश्चात् **भगवती लक्ष्मी के पुत्रों के नामों से 'जप'** अथवा **'हवन'** करना चाहिए। **'जप'** हेतु **'नामावली'** नीचे दी जा रही है। यदि **'हवन'** करना हो, तो **'नमः'** के स्थान पर **'स्वाहा'** कहकर **'हवन'** कर सकते हैं। यथा—

(१) **ॐ देव-सखाय नमः**, (२) **ॐ चिक्लीताय नमः**, (३) **ॐ आनन्दाय नमः**, (४) **ॐ कर्दमाय नमः**, (५) **ॐ श्री-प्रदाय नमः**, (६) **ॐ जात-वेदाय नमः**, (७) **ॐ अनुरागाय नमः**, (८) **ॐ सम्वादाय नमः**, (९) **ॐ विजयाय नमः**, (१०) **ॐ बल्लभाय नमः**, (११) **ॐ मदाय नमः**, (१२) **ॐ हर्षाय नमः**, (१३) **ॐ बलाय नमः**, (१४) **ॐ तेजसे नमः**, (१५) **ॐ दमकाय नमः**, (१६) **ॐ सलिलाय नमः**, (१७) **ॐ गुग्गुलाय नमः**, (१८) **ॐ कुरूण्टकाय नमः**।

(९) **भगवती महा-लक्ष्मी की उपासना, पूजा-पाठ-जप** आदि करने के अतिरिक्त नित्य की **दिन-चर्या** में **'शारदा-तिलक तन्त्र'** के निम्न-लिखित निर्देशों का पालन करने से **भगवती लक्ष्मी की कृपा** प्राप्त होती है। यथा—

(१) **अशुद्ध अन्न** कभी नहीं खाना चाहिए। (२) **केवल नमक** या **तेल** कभी नहीं खाना चाहिए। (३) शरीर एवं वस्त्र **सदैव स्वच्छ** रखना चाहिए। (४) **अपवित्र अवस्था में शयन** न करे। (५) **भूमि** पर कभी कुछ न लिखे। (६) तेल लगाने के पश्चात **स्नान** अवश्य करे। (७) **दूब, कमल, बेल** को पैरों से नहीं लांघना चाहिए। (८) **पवित्र शैय्या पर शयन** करे। (९) मुख पर **हल्दी** न लगाए। (१०) सुगन्धित **इत्र** एवं **पुष्पों** का प्रयोग करे। (११) **पश्चिम-मुख होकर भोजन** करे। (१२) सदैव **नम्रता** एवं **मुस्कान**-पूर्वक बात करे। (१३) **सत्य** बोलने का यथा-सम्भव प्रयास करें। (१४) **स्व-पत्नी** के ही सम्पर्क में रहे। (१५) **पर-स्त्री, पर-धन** के प्रति कु-दृष्टि न रखे।

* * *

श्रीमहा-लक्ष्मी की सिद्ध आरती

बाबाश्री द्वारा रचित भगवती **श्रीमहा-लक्ष्मी की आरती** का यहाँ एक संक्षिप्त रूप प्रस्तुत है। इसे **कंठस्थ** कर **नित्य श्रद्धा से 'पाठ'— 'आरती'** करे, तो **सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति** होती है। साथ ही **कष्टों का निवारण** भी होता है। यह **अनुभूत** है। **'आरती'** यदि पूरा परिवार सामूहिक रूप से करे, तो अति उत्तम। —सम्पादक

कांत्या काञ्चन संनिभा, हिम-गिरि आसीना— माँ हिम-गिरि आसीना।
अमरित-सर-सरसिज-दल, सहस्र सदासीना।
पद्मासिनि कमलासिनि, गज-द्वय द्वय दोनों—माँ गज-द्वय द्वय दोनों।
ओर भरे घट अमरित, सींचत कर दोनों।
जय देवि, जय देवि, द्वय कर कमल-धरा माँ, कर-द्वय कमल-धरा।
वर कर अपर अभय कर, चतुर करा मधुरा।। जय देवि, श्रीलक्ष्मी।।१
अम्ब प्रसीद करुण दृग्गरुण छटा-लहरी—माँ अरुण छटा-लहरी।
निज जन अतुल प्रदायनि, हरि चित्पर सहरी।
सम्पत्सुखद सनातनि, दुःख-दारिद-हारिणी—माँ दुःख-दारिद-हरिणी।
हृद्-गत शोक-विनाशिनि, पर हरि-मन-वरिणी।। जय देवि, जय देवि०।।२
कान्तिशशान्ति - मयी त्वं, शरणागत पाता— माँ शरणागत पाता।
विष्णु-प्रिया सर्वेश्वरि, शक्ति सरा माता।
क्षांतिर्भक्ति स्वजन प्रण-रक्षिणि सिध्यवधी— माँ रक्षिणि सिध्यवधी।
धृति धात्री जग धारणि, रति मति देव निधी।। जय देवि, जय देवि०।।३
लक्ष्मी लक्ष प्रदामा, कोटि प्रदा करुणा— माँ कोटि प्रदा करुणा।
गति सति भूति भुवन भर, वरुणालय करुणा।
स्थिति पोषणि भव-शोषणि, निर्मल मल हरिणी— माँ निर्मल मल हरिणी।
भव - जल पुण्य-परायणि, दुःख सरतर तरिणी।। जय देवि, जय देवि०।।४
आगच्छागच्छ त्वं, तुम बिन जग फीको—माँ तुम बिन जग फीको।
दास दया धरि विनवत, जन कर धर नीको।
सदयि दया-मयि अयि, निज जन आपद त्राता—माँ निज जन आपद त्राता।
माता भ्रात सखा तुम, जन तन मन नाता।। जय देवि, जय देवि०।।५

श्रीमहा-लक्ष्मी-सप्त-विंशाक्षर-मन्त्र-साधना

विनियोग—ॐ अस्य श्रीमहा-लक्ष्मी-सप्त-विंशाक्षर-मन्त्रस्य श्री भृगु ऋषिः, निवृद्-गायत्री छन्दः, श्रीमहा-लक्ष्मी देवता, श्रीं-बीजम्, ह्रीं-शक्तिः, श्रीमहा-लक्ष्मी-प्रसाद-सिद्धयर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीभृगु-ऋषये नमः शिरसि, निवृद्-गायत्री-छन्दसे नमः मुखे, श्रीमहा-लक्ष्मी-देवतायै नमः हृदये, **श्रीं**-बीजाय नमः गुह्ये, **ह्रीं**-शक्तये नमः पादयोः, श्रीमहा-लक्ष्मी-प्रसाद-सिद्धयर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

षडङ्ग-न्यास	**कर-न्यास**	**अङ्ग-न्यास**
श्रीं ह्रीं श्रीं कमले श्रीं ह्रीं श्रीं	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
श्रीं ह्रीं श्रीं कमलालये श्रीं ह्रीं श्रीं	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट्
श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं	अनामिकाभ्यां हुं	कवचाय हुं
श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि श्रीं ह्रीं श्रीं	कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्	नेत्र-त्रयाय वौषट्
श्रीं ह्रीं श्रीं नमः श्रीं ह्रीं श्रीं	करतल-कर-पृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

ध्यान— सिन्दूरारुण-कान्तिमब्ज-वसतिं सौन्दर्य-वारां निधिः,
कोटीराङ्गद - हार - कुण्डल-कटी-सूत्रादिभिर्भूषिताम्।
हस्ताब्जैर्वसु-पात्रमब्ज-युगलादर्शौ वदन्तीं परा—
मावीतां पारिचारिकामिरनिशं ध्यायेत् प्रियां शार्ङ्गिणः।।

अर्थात् सिन्दूर के समान देह की अरुण कान्ति। पद्म के ऊपर विराजमान। अनुपम सौन्दर्य-वती। इन्द्रनील, मणि, वलय, हार, कुण्डल और करधनी आदि आभूषणों से विभूषिता। हाथों में रत्न-पूर्ण पात्र, दो कमल और दर्पण लिए हुई। सेविकाओं से घिरी हुई। भगवान् विष्णु की प्रिया महा-लक्ष्मी का मैं ध्यान करता हूँ। (देखिए, आवरण पृष्ठ पर प्रकाशित चित्र)

मानस-पूजन—ॐ लं पृथ्वी-तत्त्वात्मकं गन्धं श्रीमहा-लक्ष्मी-प्रीतये समर्पयामि नमः। ॐ हं आकाश-तत्त्वात्मकं पुष्पं श्रीमहा-लक्ष्मी-प्रीतये समर्पयामि नमः। ॐ यं वायु-तत्त्वात्मकं धूपं श्रीमहा-लक्ष्मी-प्रीतये घ्रापयामि नमः। ॐ रं अग्नि-तत्त्वात्मकं दीपं श्रीमहा-लक्ष्मी-प्रीतये दर्शयामि नमः। ॐ वं जल-तत्त्वात्मकं नैवेद्यं श्रीमहालक्ष्मी-प्रीतये निवेदयामि नमः। ॐ शं सर्व-तत्त्वात्मकं ताम्बूलं श्रीमहा-लक्ष्मी-प्रीतये समर्पयामि नमः।

मन्त्र— ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः। (२७ अक्षर)।

वर्ण-माला में जप—

ॐ

१ अं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः अं

२ आं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः आं

३ इं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः इं

४ ईं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ईं

५ उं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः उं

६ ऊं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ऊं

७ ऋं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ऋं

८ ॠं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ॠं

९ ऌं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ऌं

१० ॡं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ॡं

११ एं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः एं

१२ ऐं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ऐं

१३ ओं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ओं

१४ औं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः औं

१५ अं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः अं

१६ अः ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः अः

१७ कं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः कं

१८ खं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः खं

१९ गं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः गं

२० घं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः घं

२१ ङं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ङं

२२ चं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः चं

२३ छं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः छं

२४ जं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः जं

२५ झं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः झं

२६ ञं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ञं

२७ टं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः टं

२८ ठं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ठं

२९ डं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः डं

३० ढं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ढं

३१ णं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः णं

३२ तं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः तं

३३ थं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः थं

३४ दं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः दं

३५ धं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः धं

३६ नं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः नं

३७ पं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः पं

३८ फं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः फं

३९ बं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः बं

४० भं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः भं

४१ मं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः मं

४२ यं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः यं

४३ रं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः रं

४४ लं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः लं

४५ वं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः वं

४६ शं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः शं

४७ षं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः षं

४८ सं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः सं

४९ हं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः हं

५० ळं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ळं

क्षं

५१ ळं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ळं

५२ हं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः हं

५३ सं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः सं

५४ षं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः षं

५५ शं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः शं

५६ वं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः वं

५७ लं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः लं

५८ रं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः रं

५९ यं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः यं

६० मं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः मं

६१ भं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः भं

६२ बं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः बं

६३ फं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः फं

६४ पं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः पं

६५ नं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः नं

६६ धं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः धं

६७ दं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः दं

६८ थं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः थं

६९ तं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः तं

७० णं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः णं

७१ ढं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ढं

७२ डं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः डं

७३ ठं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ठं

७४ टं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः टं

७५ ञं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ञं

७६ झं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः झं

७७ जं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः जं

७८ छं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः छं

७९ चं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः चं

८० ङं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ङं

८१ घं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः घं

८२ गं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः गं

८३ खं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः खं

८४ कं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः कं

८५ अः ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः अः

८६ अं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः अं

८७ औं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः औं

८८ ओं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ओं

८९ ऐं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ऐं

९० एं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः एं

९१ लृं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः लृं

९२ ॡं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ॡं

९३ ॠं ॐ श्रीं हीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं हीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ॠं

९४ ऋं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ऋं

९५ ऊं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ऊं

९६ उं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः उं

९७ ईं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः ईं

९८ इं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः इं

९९ आं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः आं

१०० अं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः अं

१०१ अं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः अं

१०२ कं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः कं

१०३ चं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः चं

१०४ टं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः टं

१०५ तं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः तं

१०६ पं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः पं

१०७ यं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः यं

१०८ शं ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महा-लक्ष्मि नमः शं

* * *

भगवती लक्ष्मी एवं दीपावली हेतु उपयोगी पुस्तकें

१- श्रीकमला कल्पतरु — ४५/-

सर्वाभीष्ट-दात्री लक्ष्मी की उपासना का विस्तृत विवरण।

२- दीपावली की पूजा-विधि — १५/-

'दीपावली' महा-पर्व पर प्रामाणिक पुस्तक। (१) धन-त्रयोदशी, (२) नरक चतुर्दशी, (३) दीपावली, (४) अन्न-कूट (गोवर्द्धन-पूजा), (५) भ्रातृ-द्वितीया या भैया-दूज— पञ्च-महा-पर्व-विषयक एक आवश्यक पुस्तक।

३- धन-प्राप्ति के प्रयोग — ६/-

दरिद्रता का निवारण, भगवती लक्ष्मी की उपासना, धनदा प्रयोग, पर्व-प्रयोग, सिद्ध स्तोत्र, सिद्ध बीसा यन्त्र, पञ्च-दशी मन्त्र, कुबेर-मन्त्र, सविधि श्रीकनक-धारा स्तव, माँ कमला के कुछ विशिष्ट मन्त्र— आदि जैसे उपयोगी विषयों से पूर्ण एक बहु-उपयोगी लघु-पुस्तक।

श्रीज्वाला-मुखी-सहस्र-नाम-स्तोत्रम्

।।पूर्व-पीठिका—श्रीभैरव्युवाच।।

भगवन् सर्व - धर्मज्ञ, देवानामभयङ्कर ! पुरा मे यत् त्वया प्रोक्तं, वरं कैलास-सानुतः।
कृपया परया नाथ, तं मे दातुं क्षमो भव।।१

।।श्रीभैरव उवाच।।

सत्यमेतत् त्वया प्रोक्तं, वरं वरय पार्वति! तं प्रयच्छामि संसिद्धयै, मनसा यदभीप्सितम्।।२

।।श्रीभैरव्युवाच।।

ज्वाला-मुख्यास्त्वया देव, सहस्राणि च तत्त्वतः। प्रोक्तानि ब्रूहि मे भक्त्या, यदि मे त्वत्-कृपा भवेत्।।३

।।श्रीभैरव उवाच।।

प्रवक्ष्यामि महा-देवि, ज्वाला-नामानि तत्त्वतः।।४

सहस्राणि कलौ नृणां, वरदानि यथेप्सितम्। अभक्ताय न दातव्यं, दुष्टायासाधकाय च।।५
या सा ज्वाला-मुखी देवी, त्रैलोक्य-जननी स्मृता। तस्या नामानि वक्ष्यामि, दुर्लभानि जगत्-त्रये।।६
विना नित्य - बलिं स्तोत्रं, न रक्ष्यं साधकोत्तमैः। दुर्भिक्षे शत्रु-भीतौ च, मारणे स्तम्भने पठेत्।।७
सहस्राख्यं स्तवं देव्याः, सद्यः सिद्धिर्भविष्यति। विना गन्धाक्षतैः पुष्पैर्धूपैर्दीपैर्विना बलिम्।।८
न रक्ष्यं साधकेनैव, देवी-नाम-सहस्रकम्। दत्त्वा बलिं पठेद् देव्या, मन्त्री नाम - सहस्रकम्।
देवि! सत्यं मया प्रोक्तं, सिद्धि-हानिस्ततोऽन्यथा।।९

विनियोग—ॐ अस्य श्रीज्वाला-मुखी-सहस्र-नाम-स्तवस्य श्रीभैरव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीज्वाला-मुखी देवता, ह्रीं बीजं, श्रीं शक्तिः, ॐ कीलकं, सहस्र-नाम-पाठे विनियोगः।।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीभैरव-ऋषये नमः शिरसि। अनुष्टुप्-छन्दसे नमो मुखे। श्रीज्वाला-मुखी-देवतायै नमो हृदि। ह्रीं बीजाय नमो नाभौ। श्रीं शक्तये नमो गुह्ये। ॐ कीलकाय नमः पादयोः। सहस्र-नाम-पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गेषु।

ध्यान— उद्यच्चन्द्र - मरीचि - सन्निभ-मुखीमेकादशाराब्जगां,
पाशाम्भोज-वराभयान्, कर-तलैः संबिभ्रतीं सादरात्।
अग्नीन्द्रर्क-विलोचनां शशि-कला-चूडां त्रि-वर्गोज्वलां,
प्रेतस्थां ज्वलदग्नि-मण्डल-शिखां ज्वाला-मुखीं नौम्यहम्।।

।।मूल-पाठ।।

ॐह्रीं ज्वाला-मुखी जैत्री, श्रीं ज्योत्स्ना जयदा जया। औदुम्बरा महा-नीला, शुक्र-लुप्ता शची श्रुतिः।।१
स्मयदा स्मय - हर्त्री च, स्मर-शत्रु-प्रियङ्करी। मानदा मोहिनी मत्ता, माया बाला बलन्धरा।।२

मग-रूपा मगावासा, भीरुण्डा भय-घातिनी। भीतिर्भयानकास्या च, भ्रूः सुभ्रूः सुखिनी सती॥३
शूलिनी शूल-हस्ता च, शूलि-वामाङ्ग-वासिनी। शशाङ्क-जननी शीता, शीतला शारिका शिवा॥४
सुचिका मधुमन्मान्या, त्रि - वर्ग - फल-दायिनी। त्रेता त्रिलोचना दुर्गा, दुर्गमा दुर्गतिर्गतिः॥५
पूता प्लुतिर्विमर्शा च, सृष्टि - कर्त्री सुखावहा। सुखदा सर्व-मध्यस्था, लोक-माता महेश्वरी॥६
लोकेष्टा वरदा स्तुत्या, स्तुतिर्द्रुत - गतिर्नुतिः। नयदा नय-नेत्रा च, नव-ग्रह-निषेविता॥७
अम्बा वरूथिनी वीर - जननी वीर - सुन्दरी। वीरसूर्वारुणी वार्ता, वराऽभय-करा वधूः॥८
वानीर - तलगा वाम्या, वामाचार-फल-प्रदा। वीरा शौर्य-करी शान्ता, शार्दूल-त्वक् च शर्वरी॥९
शलभी शास्त्र - मर्यादा, शिवदा शम्बरान्तका। शम्बरारि-प्रिया शम्भु-कान्ता शशि-निभानना॥१०
शस्त्रायुध-धरा शान्तिः, ज्योतिर्दीप्तिर्जगत्-प्रिया। जगती जित्वरा जारी, मार्जारी पशु-पालिनी (१००)॥११
मेरु - मध्य - गता मैत्री, मुसलायुध-धारिणी। मान्या मन्त्रेष्टदा माध्वी, माध्वी-रस-विघूर्णिता॥१२
मोदकाहार - मत्ता च, मत्त - मातङ्ग - गामिनी। महेश्वर-प्रियोन्मत्ता, दार्वी दैत्य-विमर्दिनी॥१३
देवेष्टा साधकेष्टा च, साध्वी सर्वत्रगाऽसमा। सन्तानक - तरुश्छाया-सन्तुष्टाऽध्व-श्रमापहा॥१४
शारदा शरदब्जाक्षी, वरदाब्ज - निभानना। नम्राङ्गी कर्कशाङ्गी च, वज्राङ्गी वज्र-धारिणी॥१५
वज्रेष्टा वज्र - कङ्काला, वानरी वायु-वेगिनी। वराकी कुलका काम्या, कुलेष्टा कुल-कामिनी॥१६
कुन्ता कामेश्वरी क्रूरा, कुल्या कामान्त-कारिणी। कुन्ती कुन्त-धरा कुब्जा, कष्टहा बगलामुखी॥१७
मृडानी मधुरा मूका, प्रमत्ता वैन्दवेश्वरी। कुमारी कुलजाऽकामा, कूवरी नड - कूवरी॥१८
नगेश्वरी नगावासा, नग - पुत्री नगारिहा। नाग-कन्या कुहूः कुण्ठी, करुणा कृपयान्विता॥१९
ककार-वर्ण-रूपाढ्या, हीः लज्जा श्रीः शुभाऽशुभा। खेचरी खग-पत्नी च, खग-नेत्रा खगेश्वरी॥२०
खाता खनित्री खस्था च, जप्या जाप्याऽजरा श्रुतिः। जगती जन्मदा जम्भी, जम्बु-वृक्ष-तल-स्थिता॥२१
जाम्बू-नद-प्रिया सत्या, सात्त्विकी सत्त्व-वर्जिता। सर्व-माता समालोका, लोकाख्यातिर्लयात्मिका॥२२
लूता लता रतिर्लज्जा, वाजिगा (२००) वारुणी वशा। कुटिला कुत्सिता ब्राह्मी, ब्रह्माणी ब्रह्म-दायिनी॥२३
व्रतेष्टा वाजिनी वस्तिःवाम - नेत्रा वशङ्करी। शङ्करी शङ्करेष्टा च, शशाङ्क-कृत-शेखरा॥२४
कुम्मेश्वरी कुरुङ्गी च, पाण्डवेष्टा परात्परा। महिषासुर - संहर्त्री, माननीया मनु-प्रिया॥२५
दक्षिणा दक्षजा दक्षा, द्राक्षा दूती द्युतिर्धरा। धर्मदा धर्म-राजेष्टा, धर्मस्था धर्म-पालिनी॥२६
धनदा धनिका धर्म्या, पताका पार्वती प्रजा। प्रजावती पुरी प्रज्ञा, पूः पुत्री पत्रि-वाहिनी॥२७
पत्रि - हस्ता च मातङ्गी, पत्रिका च पतिव्रता। पुष्टिः प्लक्षा श्मशानस्था, देवी धनद-सेविता॥२८
दयावती दया दूरा, दूता निकट - वासिनी। नर्मदाऽनर्मदा नन्दा, नाकिनी नाक-सेविता॥२९
नासा सङ्क्रान्तिरीड्या च, भैरवी छिन्नमस्तका। श्यामा श्यामाम्बरा पीता, पीत-वस्त्रा कलावती॥३०

कौतुकी कौतुकाचारा, कुल-धर्म-प्रकाशिनी। शाम्भवी गारुडी - विद्या, गरुडासन - संस्थिता॥३१
विनता वैनतेयेष्टा, वैष्णवी विष्णु - पूजिता। वार्तादा वालुका वेत्री, वेत्र - हस्ता वराङ्गना॥३२
विवेक - लोचना विज्ञा, विशाला विमला ह्यजा। विवेका प्रचुरा लुप्ता, नौर्नारायण-पूजिता॥३३
नारायणी (३००) च सुमुखी, दुर्जया दुःख-हारिणी। दौर्भाग्यहा दुराचारा, दुष्ट-हन्त्री च द्वेषिणी॥३४
वाङ्-मयी भारती भाषा, मषी लेखक-पूजिता। लेख-पत्री च लोलाक्षी, लास्या हास्या प्रियङ्करी॥३५
प्रेमदा प्रण - यज्ञा च, प्रमाणा प्रत्ययाङ्किता। वाराही कुब्जिका कारा, कारा - बन्धन-मोक्षदा॥३६
उग्रा चोग्रतरोग्रेष्टा, नृ - मान्या नरसिंहिका। नर - नारायण - स्तुत्या, नर-वाहन-पूजिता॥३७
नृ-मुण्डा नूपुराढ्या च, नृ - माता त्रिपुरेश्वरी। दिव्यायुधोग्रतारा च, त्र्यक्षा त्रिपुर-मालिनी॥३८
त्रिनेत्रा कोटराक्षी च, षट्-चक्रस्था कृमीश्वरी। कृमिहा कृमि-योनिश्च, कला चन्द्र-कला चमूः॥३९
चर्माम्बरा च चार्वङ्गी, चञ्चलाक्षी च भद्रदा। भद्र-काली सुभद्रा च, भद्राङ्गी प्रेत-वाहिनी॥४०
सुषमा स्त्री-प्रिया कान्ता, कामिनी कुटिलालका। कु-शब्दा कु-गतिर्मेधा, मध्यमाङ्का च काश्यपी॥४१
दक्षिणा-कालिका काली, काल-भैरव-पूजिता। क्लीं-कारी कु-मतिर्वाणी, बाणासुर-निसूदिनी॥४२
निर्ममा निर्ममेष्टा च, निरयोनिर्निराश्रया। निर्विकारा निरीहा च, निलया नृप-पुत्रिणी॥४३
नृप-सेव्या विरिञ्चीष्टा, विशिष्टा विश्व-मातृका। मातृकाऽर्ण-विलिप्ताङ्गी, मधु-स्राता मधु-द्रवा॥४४
शुक्रेष्टा शुक्र - सन्तुष्टा, शुक्र-स्राता कृशोदरी। वृषा वृष्टिरनावृष्टिर्लभ्या लोभ-विवर्जिता॥४५
अब्धिश्च (४००) ललना लक्ष्या, लक्ष्मी रामा रमा रतिः। रेवा रम्भोर्वशी वश्या, वासुकि-प्रिय-कारिणी॥४६
शेषा शेष-रता श्रेष्ठा, शेष-शायि-नमस्कृता। शय्या शर्व-प्रिया शस्ता, प्रशस्ता शम्भु-सेविता॥४७
आशु - शुक्षणि - नेत्रा च, क्षणदा क्षण-सेविता। क्षुरिका कर्णिका सत्या, स-चराचर-रूपिणी॥४८
चरित्री च धरित्री च, दितिर्दैत्येन्द्र-पूजिता। गुणिनी गुण-रूपा च, त्रिगुणा निर्गुणा घृणा॥४९
घोषा गजाननेष्टा च, गजाकारा गज-प्रिया। गीता गीत-प्रिया तथ्या, पथ्या त्रिपुर-सुन्दरी॥५०
पीन-स्तनी च रमणी, रमणीष्टा च मैथुनी। पद्मा पद्म-धरा वत्सा, धेनुर्मेरु-धरा मघा॥५१
मालती मधुरालापा, मातृजा मालिनी तथा। वैश्वानर-प्रिया वैद्या, चिकित्सा वैद्य-पूजिता॥५२
वेदिका वार-पुत्री च, वयस्या वाग्भवी प्रसूः। क्रीता पद्मासना सिद्धा, सिद्ध-लक्ष्मीः सरस्वती॥५३
सत्त्व-श्रेष्ठा सत्त्व-संस्था, सामान्या सामवायिका। साधकेष्टा च सत्पत्नी, सत्पुत्री सत्कुलाश्रया॥५४
समदा प्रमदा श्रान्ता, पर-लोक-गतिः शिवा। घोर-रूपा घोर-रावा, मुक्त-केशी च मुक्तिदा॥५५
मोक्षदा बलदा पुष्टिर्मुक्तिर्बलिर्प्रियाऽभया। तिल-प्रसून-नासा च, प्रसूना कुल-शीर्षिणी॥५६
पर-द्रोह-करी (५००) पान्या, पारावार-सुता भगा। भग-प्रिया भर्ग-शिखा, हेला हैमवतीश्वरी॥५७
हेरुकेष्टा वटुस्था च, वटु-माता वटेश्वरी। नटिनी त्रोटिनी त्राता, स्वसा सारवती सभा॥५८

सौभाग्या भाग्यदा भाग्या, भोगदा भूः प्रभावती। चन्द्रिका काल-हर्त्री च, ज्योत्स्नोल्काऽशनिराह्लिका॥५९
ऐहिकी चौष्मिकी चोष्मा, ग्रीष्मांशु-द्युति-रूपिणी। ग्रीवा ग्रीष्मानना गव्या, कैलासाचल-वासिनी॥६०
मल्ली मार्तण्ड-रूपा च, मान-हर्त्री मनोरमा। मानिनी मान-कर्त्री च, मानसी तापसी तुटिः॥६१
पयःस्था तु पर-ब्रह्म-स्तुता स्तोत्र-प्रिया तनुः। तन्वी तनु-तरा सूक्ष्मा, स्थूला शूर-प्रियाऽधमा॥६२
उत्तमा मणि-भूषाढ्या, मणि-मण्डप-संस्थिता। माषा तीक्ष्णा त्रपा चिन्ता, मण्डिका चर्चिका चला॥६३
चण्डी चुल्ली चमत्कार - कर्त्री हर्त्री हरीश्वरी। हरि-सेव्या कपि-श्रेष्ठा, चर्चिता चारु-रूपिणी॥६४
चण्डीश्वरी चण्ड-रूपा, मुण्ड-हस्ता मनो-गतिः। पोता पूता पवित्रा च, मज्ञा मेध्या सुगन्धिनी॥६५
सुगन्धा पुष्पिणी पुष्पा, प्रेरिता पवनेश्वरी। प्रीता क्रोधाकुला न्यस्ता, न्यक्कारा सुर-वाहिनी॥६६
स्रोतस्वती मधुमती, देव-माता सुधाम्बरा (६००)। मत्स्या मत्स्येन्द्र-पीठस्था, वीर-पाना मदातुरा॥६७
पृथिवी तैजसी तृप्तिर्मूलाधारा प्रभा पृथुः। नाग-पाश-धराऽनन्ता, पाश-हस्ता प्रबोधिनी॥६८
प्रसादना कलिङ्गाख्या, मद-नाशा मधु-द्रवा। मधु-वीरा मदान्धा च, पावनी वेदना स्मृतिः॥६९
बोधिका बोधिनी पूषा, काशी वाराणसी गया। कौशी चोज्जयिनी धारा, काश्मीरी कुंकुमाकुला॥७०
भूमिः सिन्धुः प्रभासा च, गङ्गा गौरी शुभाश्रया। नाना-विद्या-मयी वेत्र-वती गोदावरी गदा॥७१
गद-हर्त्री गजारूढा, इन्द्राणी कुल - कौलिनी। कुलाचारा कुरूपा च, सु-रूपा रूप-वर्जिता॥७२
चन्द्र-भागा च यमुना, यामी यम-क्षयङ्करी। काम्भोजी सरयूश्चित्रा, वितस्तैरावती झषा॥७३
चषिका पथिका तन्त्री, वीणा वेणुः प्रियम्वदा। कुण्डलिनी निर्विकल्पा, गायत्री नरकान्तका॥७४
कृष्णा सरस्वती तापी, पयोर्णा शत-रुद्रिका। कावेरी शत-पत्राभा, शत-बाहुः शत-हृदा॥७५
रेवती रोहिणी क्षिप्या, क्षीणा क्षोणी क्षमा क्षया। क्षान्तिर्भ्रान्तिर्गुरुर्गुर्वी, गरिष्ठा गोकुला नदी॥७६
नादिनी कृपिणी कृष्या, सत्कुटी भूमिका (७००) भ्रमा। विभ्राजमाना तीर्थ्या च, तीर्था तीर्थ-फल-प्रदा॥७७
तरुणी तामसी पाशा, विपाशा पाश - धारिणी। पशूपहार-सन्तुष्टा, कुक्कुटी हंस-वाहना॥७८
मधुरा विपुलाऽकाङ्क्षा, वेद-काण्डी विचित्रिणी। स्वप्नावती सरित् सीता-धारिणी मत्सरी च मुत्॥७९
शतद्रूर्भारती कद्रूरनन्तानन्त - शाखिनी। वेदना वासवी वेश्या, पूतना पुष्प - हासिनी॥८०
त्रि-शक्तिः शक्ति-रूपा चाक्षर-माता क्षुरी क्षुधा। मन्दा मन्दाकिनी मुद्रा, भूता भूत-पति-प्रिया॥८१
भूतेष्टा पञ्च-भूतघ्नी, स्वक्षा कोमल-हासिनी। वासिनी कुहिका लम्भा, लम्ब-केशी सुकेशिनी॥८२
ऊर्ध्व-केशी विशालाक्षी, घोरा पुण्य-पति-प्रिया। पांसुला पात्र-हस्ता च, खर्परी खर्परायुधा॥८३
केकरी काकिनी कुम्भी, सुफला केकराकृतिः। विफला विजया श्रीदा, श्रीद-सेव्या शुभङ्करी॥८४
शैत्या शीतालया शीधु-पात्र-हस्ता कृपावती। कारुण्या विश्व-सारा च, करुणा कृपण कृपा॥८५
प्रज्ञा ज्ञाना च षड्-वर्गा, षडास्या षण्मुख-प्रिया। क्रौञ्ची क्रौञ्चाद्रि-निलया, दान्ता दारिद्र्य-नाशिनी॥८६
शाला चाभासुरा साध्या, साधनीया च सामगा। सप्त-स्वरा सप्त-धरा, सप्त-सप्ति-विलोचना॥८७
स्थितिः क्षेमङ्करी स्वाहा, वाचाली (८००) विविधाम्बरा। कल-कण्ठी घोष-धरा, सुग्रीवा कन्धरा रुचिः॥८८
शुचिस्मिता समुद्रेष्टा, शशिनी वशिनी सु-दृक्। सर्वज्ञा सर्वदा शारी, सु-नामा सुर-कन्यका॥८९
सेना सेना-सुता शृङ्गी, शृङ्गिणी हाटकेश्वरी। होटिका हारिणी लिङ्गा, भग-लिङ्ग-स्वरूपिणी॥९०
भग-माता च लिङ्गाख्या, लिङ्ग-प्रीतिः कलिङ्गजा। कुमारी युवती प्रौढा, नवोढा प्रौढ-रूपिणी॥९१

रम्या रजोवती रज्ञु, रजोली राजसी घटी। कैवर्ती राक्षसी रात्री, रात्रिञ्चर-क्षयङ्करी।।९२
महोग्रा मुदिता मिल्ली, मल्ल-हस्ता भयङ्करी। तिलाभा दारिका द्वाःस्था, द्वारिका-मध्य-देशगा।।९३
चित्र - लेखा वसुमती, सुन्दराङ्गी वसुन्धरा। देवता पर्वतस्था च, पर-भूः परमाकृतिः।।९४
पर-मूर्तिर्मुण्ड-माला, नाग-यज्ञोपवीतिनी। श्मशान-कालिका श्मश्रुः, प्रलयात्मा प्रलोपिनी।।९५
प्रस्थस्था प्रस्थिनी प्रस्था, धूम्रार्चिर्धूम्र-रूपिणी। धूम्राङ्गी धूम्र-केशा च, कपिला काल-नाशिनी।।९६
कङ्काली काल-रूपा च, काल-माता मलिम्लुची। शर्वाणी रुद्र-पत्नी च, रौद्री रुद्र-स्वरूपिणी।।९७
सन्ध्या त्रि-सन्ध्या सम्पूज्या, सर्वैश्वर्य-प्रदायिनी। कुलजा सत्य-लोकेशा, सत्य-वाक् सत्य-वादिनी।।९८
सत्य-स्वरा सत्य-मयी, हरिद्वारा हरिन्मयी। हरिद्रत्न-मयी राशिः (९००) ग्रह-तारा-तिथि-तनुः।।९९
तुम्बुरुस्रुटिका त्रोटी, भुवनेशी भयापहा। राज्ञी राज्य-प्रदा योग्या, योगिनी भुवनेश्वरी।।१००
तुरी तारा महा-लक्ष्मीर्भीडा भार्गी भयानका। काल-रात्रिर्महा-रात्रिर्महा-विद्या शिवालया।।१०१
शिवासङ्गा शिवस्था च, समाधिरग्नि-वाहना। अग्नीश्वरी महा-व्याप्तिर्बलाका बाल-रूपिणी।।१०२
वटुकेशी विलासा च, सदसत्-पुर-भैरवी। विघ्नहा खलहा गाथा, कथा कन्या शुभाम्बरा।।१०३
क्रतुहा क्रतुजा क्रान्ता, माधवी चामरावती। अरुणाक्षी विशालाक्षी, पुण्य-शीला विलासिनी।।१०४
सुमाता स्कन्द-माता च, कृत्तिका भरणी बलिः। जिनेश्वरी सु-कुशला, गोपी गो-पति-पूजिता।।१०५
गुप्ता गोप्यतरा ख्याता, प्रकटा गोपितात्मिका। कुलाम्नाय-वती कीला, पूर्णा स्वर्णाङ्गदोत्सुका।।१०६
उत्कण्ठा कल-कण्ठी च, रक्तपा पानपाऽमला। सम्पूर्ण-चन्द्र-वदना, यशोदा च यशस्विनी।।१०७
आनन्दा सुन्दरी सर्वानन्दा नन्दात्मजा लया। विद्युत्-खद्योत-रूपा च, सादरा जविका जविः।।१०८
जननी जन-हर्त्री च, खर्परा खञ्जनेक्षणा। जीर्णा जीमूत-लक्ष्या च, जटिनी जय-वर्धिनी।।१०९
जलस्था च जयन्ती च, जम्भारि-वरदा तथा। सहस्र-नाम-सम्पूर्णा, देवी ज्वालामुखी स्मृता (१०००)।।११०

।।फल-श्रुति।।

इति नाम्नां सहस्रं तु, ज्वाला-मुख्याः शिवोदितम्। चतुर्वर्ग-प्रदं नित्यं, बीज-त्रय-प्रकाशितम्।।१
मोक्षैक - हेतुमतुलं, भुक्ति - मुक्ति -प्रदं नृणाम्। स्तुत्यं च साधनीयं च, सर्वस्वं सारमुत्तमम्।।२
महा - मन्त्र - मयं विद्या - मयं विद्या-प्रदं परम्। पर-ब्रह्म-स्वरूपं च, साक्षादमृत-रूपिणम्।।३
अद्वैत - रूपिणं नाम्नां, सहस्रं भैरवोदितम्। यः पठेत् पाठयेद् वापि, शृणोति श्रावयेदपि।।४
भक्त्या युतो महा-देवि, स भवेद् भैरवोपमः। शिव-रात्र्यां च संक्रान्तौ, ग्रहणे जन्म-वासरे।।५
भैरवस्य बलिं दत्त्वा, मूल-मन्त्रेण मान्त्रिकः। पठेन्नाम-सहस्रं च, ज्वाला-मुख्याः सु-दुर्लभम्।।६
अनन्त-फलदं गोप्यं, त्रि-सन्ध्यं यः पठेत् सुधीः। अणिमादि-विभूतीनामीश्वरो धार्मिको भवेत्।।७
अर्ध - रात्रे समुत्थाय, शून्य - गेहे पठेदिदम्। नाम्नां सहस्रकं दिव्यं, त्रि-वारं साधकोत्तमः।।
कर्मणा मनसा वाचा, ज्वाला-मुख्याः सुतो भवेत्।।८

।।श्रीरुद्र-यामले तन्त्रे दश-विद्या-रहस्ये श्रीज्वाला-मुखी-सहस्र-नाम-स्तोत्रम्।।

* * *

कार्तिक शुक्ला नवमी रविवार, ५ नवम्बर, २००० के पावन अवसर पर :

श्री श्रीजगद्धात्री-पूजा

❖ परम पूज्य श्री हिमालय अरण्य जी

शारदीय दुर्गा-पूजनोत्सव के बाद ही **शरद-पूर्णिमा** की ज्योत्स्ना में **भगवत् शक्ति** के **ऐश्वर्य** और **श्री-रूपिणी (कोजागरी) लक्ष्मी देवी** एवं **कार्तिक-संक्रान्ति** के दिन शौर्य-वीर्य-रूपी **कार्तिक-पूजा** तथा **अमावास्या** के घोरान्धकार में **काल-भयङ्करी काली-मूर्ति की पूजा** समाप्त कर, **कार्तिक शुक्ला नवमी** के अर्ध-ज्योत्स्नालोक में भारत-वासी **'जगद्धात्री-पूजनोत्सव'** के अलौकिक आनन्द में अपने को कृत-कृत्य मानते हैं।

जो पौत्तलिकता (**मूर्ति-पूजा**) समझकर इन उत्सवों में भाग नहीं लेते, वे निर्बोध तथा अतिभ्रान्त हैं। हिन्दुओं के देश में पौत्तलिकता नहीं है, यह सब तो **हृदय की आराधना** है। जो भी **हिन्दुओं की पूजा, ध्यान, स्तव** और **स्तुति** है, वह विश्व के सभी देशों तथा जातियों के बीच किसी-न-किसी रूप में अनुष्ठित होता आ रहा है।

विश्व-ब्रह्माण्ड के अतुल भण्डार से **'ज्ञान'** जिस प्रकार **'रत्नों'** को खोजकर हृदय-राज्य में संग्रहीत करता है, उसी प्रकार **राग, प्रीति, दया** और **भक्ति** भी दिखाई देती है। **कल्पना** जाग्रत हो उठती है एवं अतुलनीय शोभा का सृजन करती है। **अनुराग, प्रीति** एवं **भक्ति** ही मूर्तिमती होती है। यह समस्त **आन्तरिक भावना** ही है, स्वप्न मात्र नहीं है। **कल्पना** जिस मूर्ति को मूर्त-रूप प्रदान करती है, वह वास्तव में **ज्ञानोपलब्ध सामग्री** है। भक्ति के आदेश क्रम से कल्पना जब **मूर्तियों का गठन** करती है, तब **हृदय देव-भाव से परिपूर्ण** हो जाता है। **हृदय में ही प्रतिमा की प्रतिष्ठा** होती है। हृदय में प्रतिष्ठित उसी प्रतिमा का बाह्य विकास **दुर्गोत्सव, सरस्वती** और **लक्ष्मी-पूजा, काली** और **जगद्धात्री-पूजा** है। **हृदय-रूपी स्वर्ण-सिंहासन** में जो मूर्ति पहले पहल कल्पना कर बिठाई गई थी, भक्ति-भाव से जिस मूर्ति को फूल एवं चन्दन-चर्चित किया गया है, बाद में **बाह्य यजन** के रूप में उसी प्रतिमा को मूर्तिमती करके पूजा करते हैं। क्या यह भ्रान्ति है? पौत्तलिकता है?? क्या यह बच्चों का पुतली (गुड़िया) खेल है??? इस प्रकार की जिनकी धारणा है, वे महा-भ्रान्त हैं। **प्रतिमा-प्रतिष्ठा** कर पूजा करना तो **आभ्यन्तरिक भावना का उत्तम बाह्य विकास** है।

वास्तविकता एवं **आदर्श** को प्रतिदिन नयन-छवि के रूप में जागरूक रखना आवश्यक है। इसीलिए हिन्दुओं के **'बारह महीने तेरह उत्सव'** प्रसिद्ध हैं।

इस जगत् में **शक्ति** के सिवा अन्य किसी की पूजा नहीं होती। **उग्र (विकट) मूर्ति** में शक्ति है, **अति मोहिनी मूर्ति** में भी शक्ति है। **शक्ति—भयङ्करी** भी है तथा **मोह-मयी** भी। **शक्ति** की **'हरि-हर'** मूर्ति भी है। **शक्ति** का केवल **भय** ही नहीं, **मोह** भी होता है। **शक्ति** कभी

भय-प्रदर्शन करती है, कभी **चमत्कृत** करती है, धीरे-धीरे **मोह-ममता से हृदय का आकर्षण** भी करती है। कभी **हृदय-पद्म में आनन्द से नृत्य** करती है, कभी **भक्ति के उत्स को उत्साहित** करती है। जो भी घटित होता है, सभी **शक्ति का विकास** मात्र है। इस विश्व-ब्रह्माण्ड में जो भी है—**सर्व-शक्ति की अधिष्ठात्री शक्ति-रूपिणी भगवती 'दुर्गा'** ही है।

ब्रह्म-वैवर्त्त-पुराण के **प्रकृति-खण्ड** में **शक्ति-रूपिणी भगवती** की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है—**'शक्'**- शब्द **ऐश्वर्य** और **'ति'**-शब्द **पराक्रम**-वाचक है अर्थात् **शक्ति— पराक्रम** एवं **ऐश्वर्य**-रूपिणी है। **'भग'**-शब्द से समृद्धि सम्पत्ति और यश का बोध होता है। इसी अर्थ-त्रय **(पराक्रम, ऐश्वर्य, समृद्धि)** से युक्त होने से **शक्ति—'भगवती'** नाम से कथित हुई है। जो **शक्ति— जगत्-व्यापिनी** है, वही **'महा-शक्ति'** है। वही **'शक्ति'** की समष्टि है, वही शक्ति शत-रूपिणी होकर जगत् में विकसित हुई है। उसी शक्ति का उन्नत रूप **चेतना** है। **चेतना का उन्नत विकास— क्रिया** और **बुद्धि** है। अतएव **बुद्धि-जीवी प्राणी** समाज के **शौर्य** एवं **वीर्य** के द्योतक हैं। **विद्या, बुद्धि** एवं **ऐश्वर्य** और **शौर्य** से समन्विता **महा-शक्ति** पाप और यथेच्छाचारिता के पशु-बल-स्वरूप **'महिषासुर'** को अपने शासन में रखती है। अतएव वह **महा-शक्ति— 'शासन'-देवी** है। यही हिन्दू जाति की **शक्ति-पूजा** का **रहस्य** है।

शक्ति-पूजा— महा-पूजा को हिन्दू जाति एक बार ही नहीं, बार-बार करती है। ऋषि-मुनियों के काल से ही निर्देशानुसार करती आ रही है। एक बार करने से उनका हृदय तृप्त नहीं होता, अतएव बार-बार हम **'शक्ति-पूजा'** को करते आ रहे हैं। एक बार **सकल शक्ति** को मिलाकर पूजा करना, पुनः उनकी **स्वतन्त्र रूप** से पूजा करना। एक बार **एकत्र रूप से महा-शक्ति-पूजा,** पुनः **स्वतन्त्र भाव से महा-शक्ति-पूजा**। यही है—**लक्ष्मी, श्यामा** और **जगद्धात्री की पूजा**। जिनकी प्रीति जिस **शक्ति की पूजा** से सन्तृप्त होती है, उनकी प्रीति उसी **प्रतिमा की प्रतिष्ठा** करती है।

'ब्रह्म' जब निर्गुण और निष्क्रिय हैं, तब वे **'ब्रह्म'** हैं और सगुण या प्रकट होने पर **ईश्वर** या **पुरुष**। वही **वासना** या **इच्छा-शक्ति प्रकृति** या **आद्या-शक्ति महा-माया** है। वही **पुरुष**- और **प्रकृति** सर्वत्र-गामी और सर्वत्र अवस्थित हैं। **पुरुष** निर्गुण हैं, वे कभी भी दृश्य नहीं होंगे। परमा **प्रकृति**-रूपिणी **महा-माया** सृजनादि के समय **सगुणा** और समाधि-काल में **निर्गुणा** होती है। **प्रकृति** अनादि है, अतएव वे निरन्तर इस संसार के **कारण**-रूप में विद्यमान हैं। वे कभी भी **कार्य**-रूप नहीं होतीं। वे जब **कारण**-रूपिणी होती हैं, तभी **सगुणा** हैं एवं **पुरुष**-सन्निधान में **परमात्मा**-सहित अभिन्न-भाव से अवस्थान करती हैं। **गुण-त्रय की साम्यावस्था** हेतु गुणोद्भव के अभाव से ही वे **निर्गुणा** होती हैं। **अहङ्कार** व **शब्द-स्पर्शादि** गुण-समुदाय कारण-रूप में उत्तरोत्तर क्रम से कार्य-रूप में परिणत होकर उनकी **क्रिया** का सम्पादन होता है। इस **क्रिया** का कभी भी विराम नहीं होता। अहङ्कार दो प्रकार के हैं—१ **'पराहन्ता-रूप'** सत्-पदार्थ से उत्पन्न, २ **'महत्-तत्व'** से उत्पन्न ज्ञानी। **पराहन्ता**-रूपा प्रकृति को **'अव्यक्त'** कहते हैं। अतएव **प्रकृति** ही **जगत् का कारण** हैं और अहङ्कार है— **प्रकृति का कार्य**। प्रकृति ने उसे

त्रिगुण-समन्वित कर **जगत् के कार्य-साधनार्थ** प्रतिष्ठित करके रखा है। उसी **पराहन्ता (समष्टि-बुद्धि-तत्त्व)** से **महत्-तत्त्व** की उत्पत्ति होती है। ज्ञानी उसे **'बुद्धि'** कहते हैं। इस प्रकार **'महत्त्व'—कार्य** है और **'पराहङ्कार'** उसका **कारण। महत्-तत्त्व**-जात **कार्य**-रूप अहङ्कार से **पञ्चीकृत पञ्च-महा-भूत** की उत्पत्ति होती है। समस्त प्रपञ्च के उत्पत्ति-काल में इस **पञ्च-तन्मात्रा** के सात्विकांश से **पञ्च ज्ञानेन्द्रिय,** राजसांश से **पञ्च-कर्मेन्द्रिय** एवं पञ्च-भूत के मिश्रित सात्विकांश से **अन्तःकरण** उत्पन्न हुआ है। अतः इस **प्रपञ्च**-समुदाय का कारण **सगुण ब्रह्म** या **महा-शक्ति** ही है।

यह **महा-शक्ति** किस प्रकार की है, इसे समझना या उसके **स्वरूप-तत्त्व** को जानने की शक्ति साधारण मनुष्य में नहीं है। जड़ **शक्ति-तत्त्व** कितना ही व्यक्त क्यों न हो, **जड़ातीत ज्ञान-शक्ति** की विशिष्ट उन्नति हुए बिना इस **महा-शक्ति के तत्त्वों का ज्ञान** नहीं हो सकता। यह **महा-शक्ति-विश्व का सृजन, पालन** और **संहार** करती है। अतएव साधक को इस **महती महा-माया शक्ति** को जानना आवश्यक है। जो इन **महा-शक्ति** को जानते हैं, वही **मृत्यु को जय** करते हैं एवं **समस्त पापों से उत्तीर्ण** होकर इस लोक में **महती सम्पद्-भोग** एवं **पर-लोक में अमृतत्व-लाभ** करते हैं। **देवी-भागवत** का वचन है—

निर्गुणा सगुणा चेति, द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः। सगुणा रागिभिः सेव्या, निर्गुणा तु विरागिभिः।।

पर-ब्रह्म-स्वरूपिणी सच्चिदानन्द-मयी परा-शक्ति को ब्रह्मवादी **सगुण** और **निर्गुण** के भेद से दो प्रकार की बताते हैं। संसार में **आसक्त सकाम साधक** उनका **सगुण**-भाव से और वासना-वर्जित ज्ञान-वैराग्य-पूर्ण **निर्मल-चेता योगी— निर्गुण**-भाव से आश्रय लेकर उनकी आराधना करते हैं।

स्त्री-अणु जिस प्रकार **पुं**-अणु के संयोग से परिणाम को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार **शक्ति** और **पुरुष** के संयोग से परिणाम-प्राप्त एवं क्रम-विवर्धित होकर स्थूल प्रकृति में परिणत होते हैं। जड़ विज्ञान के अनुसार जड़ पदार्थ के परमाणु-पुञ्ज जिस प्रकार जड़ शक्ति के संयोग से क्षोभित और परिणत होते हैं, उसी प्रकार **महा-शक्ति** और तद्-रूप **पुरुष**-संभोग से क्षोभित होकर वे **परिणाम, विकार** और **विषमता** को प्राप्त होते हैं। यद्यपि **परा-शक्ति** से यह **अपरा-शक्ति** पृथक् है, किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि **परा-शक्ति** ही **पुरुष** के योग से क्रम-परिवर्तन के पथ में **अपरा-शक्ति** है।

प्रलय-काल में जब ब्रह्माण्ड **कारणार्णव में प्लावित** रहता है, **ईश्वर** समस्त पदार्थों के **कर्म-वीज** या **जीव-वीज** अपने अङ्ग में संहृत कर उसी **कारण-वारि** में सोए रहते हैं। तब यह **परा-शक्ति** भी निश्चेष्टा रहती है, एवं उनमें **गुण-क्षोभ** भी नहीं होता। अतः **परिणाम** भी प्राप्त नहीं होता। उस समय गुण **स्पन्दन-रहित** और **मृत-वत्** रहते हैं। तत्पश्चात् **सृष्टि के प्राक्-काल** में, जब **पुरुष का तेज— परा-शक्ति में संक्रमित** होता है, तब उनकी **गुण-क्रिया** आरम्भ होकर क्रम-वर्द्धित एक अवस्था से दूसरी अवस्था में गमन करती है। कहा भी है—**'सत्वं रजस्तम इति, गुणाः प्रकृति-सम्भवाः।'**

मूल प्रकृति महा-शक्ति से **सत्व, रजः और तमो-गुण की उत्पत्ति** होती है। इन तीन गुणों के देवता हैं— **ब्रह्मा, विष्णु** और **शिव** अर्थात् **ब्रह्मा-विष्णु** और **शिव— प्रकट ईश्वर के तीन गुण-विभाग** हैं। **ईश्वर** को जानने के लिए इन **तीनों देवों** को जानना होगा। **तीन गुणों** को जाने बिना **सगुण** अर्थात् **पूर्ण-गुणाभिषिक्त ईश्वर** को कैसे जानेंगे?

ब्रह्मा, विष्णु और **शिव**— मूल ईश्वर के विकसित गुण की स्वतन्त्र पूर्ण-भाव-मयी शक्ति के स्वतन्त्र विकास **'त्रि-मूर्ति'** हैं। जगत् की **सृष्टि, स्थिति** और **संहार** कार्य-जन्य **ब्रह्मा, विष्णु** और **शिव**-रूप ईश्वर के **तीन गुण— तीन शक्तियों** को लेकर कार्य करते हैं। ये **गुण** और **शक्ति-त्रय— सप्त-लोकों का सृजन, पालन** और **लय** करते हैं। ये **सूक्ष्मादपि सूक्ष्म गुण** और **शक्ति-त्रय** क्रम से स्थूल होकर हमारे स्थूलतर जगत् तक आकर परिदृश्यमान पृथ्वी-रूप में शोभा पा रहे हैं। **ब्रह्मा—पुरुष** और **प्रकृति** से चैतन्य-प्रवाह और वस्तु संग्रह कर **जगत् का प्रकाश** कर रहे हैं। सर्वतोभाव से आत्म-वश करने का नाम है— **पालन। विष्णु**— परम चैतन्यावस्था से **जीव** और आत्म-रूप में **माया** के मध्य-गत होकर **माया की सकल विभूति** को अर्थात् **भूत, इन्द्रिय** और **मन** आदि को सजीव रखकर आत्म-वश कर रहे हैं और **शिव**— ईश्वर की वासना से उत्पन्न **उद्देश्य-रूपी जीव और जगत् का प्रकाश** करने के लिए **चैतन्य** और **सत्** को प्रयोजनानुसार अंश कर रूपान्तरित करते हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और **शिव** या **सत्, चैतन्य** और **काल**—ये तीनों **चैतन्य-मयी तीन शक्तियाँ** हैं। ईश्वर की उपाधि **अमूर्त महा-माया, त्रिगुणा-मयी सूक्ष्म शक्ति** है। वही **सृजन, पालन** एवं **लय** करने के लिए **ब्रह्मा, विष्णु** और **शिव** को किंचित् स्थूल, जिस-जिस शक्ति का प्रयोजन है, दान करती है। उसी से **ब्रह्मा, विष्णु** और **शिव** निज-निज कार्य करते हैं। **क्रम-विकास** ही **शक्ति का विकास** है एवं विवर्तवाद है— **प्रकृति का प्रकाश**। अतः **सगुण ब्रह्म** या **ईश्वर** को जानना हो, तो **ब्रह्मा, विष्णु** एवं **शिव** का एवं उनकी क्रिया-परायणा **तीन शक्तियों का ज्ञान** होना आवश्यक है क्योंकि समस्त **शक्ति,** समस्त **गुण** को एकत्रकर, उन्हें जानकर एवं उनका उत्कर्ष साधन कर ही **पूर्णता की ओर** अग्रसर होना होता है।

'वेद' में इसीलिए ब्राह्मण के लिए **नित्य सन्ध्योपासना** में **सगुण ब्रह्म** के **ब्रह्मा, विष्णु** और **शिव** को **त्रि-मूर्तियों**-सहित **ब्रह्म-शक्ति गायत्री देवी** की **त्रि-मूर्ति की ध्यान-धारणा** की व्यवस्था की गई है। इसी के अनुरूप **'तन्त्र'** में **महा-शक्ति** की उक्त **त्रिमूर्ति की उपासना** इस प्रकार लिपि-बद्ध है—

इच्छा क्रिया तथा ज्ञानं, गौरी ब्राह्मी च वैष्णवी। त्रिधा शक्तिः स्थिता लोके, तत्परं ज्योतिरोम्।

महा-निर्वाण तन्त्र, पटल ४ के उक्त वचन के अनुसार **सत्व, रजः** और **तमोगुण**-भेद से महा-शक्ति **इच्छा, क्रिया** और **ज्ञान** अथवा **गौरी, ब्राह्मी** और **वैष्णवी** नाम से विभक्त होकर जगत् के सृष्ट्यादि कार्य करती हैं।

साधक के हृदय में ये तीन गुण **दुर्गा, जगद्धात्री** और **काली**-मूर्ति के रूप में विकसित होते हैं। **वैदिक ऋषि** की जो कल्पना **ब्रह्मा, विष्णु** और **महेश्वर** की प्रतिष्ठाता है, वही कल्पना

दुर्गा, जगद्धात्री और **काली**-मूर्ति की सृष्टि-कारिणी है।

महा-शक्ति एकाधार में **सत्व, रजः** और **तमोगुण**-धारिणी है। **जन्म, मृत्यु** और **पालन**— प्रकृति के इस धर्म से प्राणी-जगत् उत्पन्न होता है, पालित और ध्वंस होता है। **महा-शक्ति के प्रभाव** से विश्व स्वयं अपने को गढ़ता है, तोड़ता है एवं स्वयं रक्षा करता है, किन्तु इसके मूल में है वही **'ब्रह्म'**। अतः **ब्रह्म-स्वरूप सदा-शिव की जाया सत्-रूपा दुर्गा, चैतन्य-रूपिणी जगद्धात्री** और **काल-रूपिणी काली** अथवा **ब्रह्मा, विष्णु** और **शिव,** एक ही पुरुष, जगत् के एक ही मूल-तत्त्व हैं। ये मूल-तत्त्व **महा-शक्ति के प्रभाव** से जब **प्रकृति**-रूप में प्रकटित होकर विश्व-रूप धारण करते हैं, तब **शक्ति**-रूप में प्रकटित होते हैं।

शक्ति-रूप **दुर्गा, काली** और **जगद्धात्री** से जगत् व्यवहार-सम्पन्न होता है। **रजो-रूपिणी जगद्धात्री** से जगत् का **सृष्टि**-कार्य, **सत्व-स्वरूप दुर्गा** से जगत् का **पालन** और **रक्षा-कार्य** एवं **तमो-रूपिणी काली** से जगत् का **संहार**-कार्य सम्पन्न होता है। **'चण्डी'** (११।६) की यथार्थ स्तुति है—

कला-काष्ठादि-रूपेण, परिणाम-प्रदायिनि, विश्वस्योपरतौ शक्ते, नारायणि! नमोऽस्तु ते।

हे देवि! आप कला, काष्ठा—क्षण-मुहूर्तादि, सूक्ष्म काल-रूप जगत् की परिणाम-दायिनी (अखण्डा काल-रूपिणी) एवं जगत् की संहार-समर्था शक्ति-रूपिणी हैं। हे नारायणि! आपको प्रणाम करता हूँ।

परिणाम-स्वरूपिणी **प्रकृति— उत्पत्ति, पालन** और **प्रलय**-मूर्ति से सर्वदा ही विद्यमान दिखाई देती हैं। इसीलिए हिन्दू प्रति-वर्ष **दुर्गा, काली** और **जगद्धात्री की प्रतिष्ठा और पूजा** कर रहे हैं। सम्वत्सर के बाद सम्वत्सर, युग-युग से इस प्रकार 'हिन्दू'— **शक्ति की पूजा** करते आ रहे हैं। हमारे भाग्य-विधाता पूर्वज ऋषि-मुनि जिस विधान से **शक्ति-पूजा** की स्थापना कर गए हैं, एक दिन अवश्य ही वह समग्र विश्व में व्याप्त होगा। ऐसी आशा की जा सकती है। समग्र विश्व जब हिन्दुओं की व्यवस्था और पूजा-पद्धति (भारतीय दर्शन) के **वास्तविक अर्थ एवं गूढ़ तत्त्वों** को ग्रहण कर सकेगा, तब वह पद्धति को निश्चय ही सादर स्वीकार करेगा, यह हमारा ध्रुव विश्वास है।

उपर्युक्त संङ्केतों के अनुसार **महा-शक्ति जगद्धात्री श्री-दुर्गा** के **'मूर्ति-रहस्य'** की जानकारी भी होती है। यथा (चित्र हेतु, देखिए 'चण्डी' वर्ष ५६, 'शारदीय नवरात्र'-अङ्क का पहला आवरण पृष्ठ।)—

सिंह-स्कन्ध-समारूढ़ां, नानालङ्कार-भूषितां। चतुर्भुजां महा-देवीं, नाग-यज्ञोपवीतिनीं।।
शङ्ख-शार्ङ्ग-समायुक्त, वाम-पाणि-द्वयान्विताः। चक्रं च पञ्च-वाणांश्च, धारयन्तीं च दक्षिणे।।
रक्त-वस्त्र-परीधानां, बालार्क-सदृशीं तनुं। नारदाद्यैर्मुनि-गणैः, सेवितां भव-सुन्दरीं।।
त्रिवली-वलयोपेत-नाभि - नाल-मृणालिनीं। रत्न-दीप-मय-द्वीपे, सिंहासन-समन्विते।।
प्रफुल्ल-कमलारूढ़ां, ध्यायेत् तां भव-गेहिनीं।।

जगद्धात्री— रजो-रूपिणी **ब्राह्मी** शक्ति है। अतएव **रक्त-वर्णा** एवं **रक्त-वस्त्र-परिहिता** है। **रजो-गुण—रक्त-वर्ण** है। वही रजो-गुणान्विता सृष्टि-कारिणी शक्ति— **'परिणाम-रूपिणी'** है। वह **ऐश्वर्य-परिपूर्णा, ज्ञान-सम्पन्ना** है। **शौर्य** और **वीर्य,** उसका अन्तर्हित महा-बल है। **ऐश्वर्य, ज्ञान** और **शौर्य-वीर्य** परिपूर्ण होकर प्राकृतिक व्यभिचार-रूप पाप को वह महा-बल निरन्तर ही विनष्ट कर रहा है। उसी पशु-बल को वश में करके **जगद्धात्री 'सिंह-वाहिनी',** चार प्रकार की सृष्टि, अतएव **'चतुर्हस्ता'**—सृष्टि के विघ्न-नाश के निमित्त दो हाथों में **धनुर्बाण।** उनकी सृष्टि सदैव परिवर्तित होती है। अतएव एक हाथ में **'चक्र'** शोभायमान है एवं **आकाश**-तत्त्व से प्रथम **सृष्टि-क्रिया** आरम्भ होती है, उसी आकाश के गुण **'शब्द'** के निदर्शन-स्वरूप हाथ में **'शङ्ख'** धारण किए हैं। **चन्द्र, सूर्य और अग्नि**-रूप उनके **त्रि-नयन** हैं।

ऐसी **आदर्श कल्पना,** अध्यात्म जगत् में हिन्दू-ऋषियों के अतिरिक्त, कविता की लेखनी से ऐसा चित्र कौन अङ्कित कर सका है?

शक्ति-पूजा-प्रतिष्ठा से हीन किसी भी जाति का उत्थान नहीं हो सकता। **प्राण-स्वरूपा शक्ति-पूजा की अवहेलना** कर **'भारत-वर्ष'** इस समय **बाहरी आनन्दोल्लास में उन्मत्त** है, इसीलिए भारत की आज यह **शोचनीय दशा** हो रही है। आवें, **हम सब भारतवासी एक प्राण और मन से मिलकर आज फिर 'जगद्धात्री देवी' की वास्तविक पूजा करें एवं ऋषि-महर्षि-गण के बताए हुए मार्ग का अनुसरण करें।**

सभी मिलकर आवें। **महा-शक्ति की वास्तविक पूजा** आरम्भ कर **देश की मङ्गल-कामना** के लिए उनके (रक्त-शुक्ल-मिश्र-निर्वाण) **'शिव-शक्ति-सामरस्य', श्वेत-रक्त-मिश्रित, हरि-हर-विधि-वन्दित, शमन-लाञ्छित अलक्तक चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम कर "निर्वाण"-रूपी चरणामृत का पान** करें।

ॐ जगद्धात्रि! जगन्मातर्जगदानन्द-दायिनि! महिषासुर-संहन्त्रि! प्रणमामि निरन्तरम्।।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव

ब्रह्मा, विष्णु और **शिव**— मूल ईश्वर के विकसित गुण की स्वतन्त्र पूर्ण-भाव-मयी शक्ति के स्वतन्त्र विकास **'त्रि-मूर्ति'** हैं। जगत् की **सृष्टि, स्थिति** और **संहार** कार्य-जन्य **ब्रह्मा, विष्णु** और **शिव**-रूप ईश्वर के **तीन गुण— तीन शक्तियों** को लेकर कार्य करते हैं। ये **सूक्ष्मादपि सूक्ष्म गुण** और **शक्ति-त्रय** क्रम से स्थूल होकर हमारे स्थूलतर जगत् तक आकर परिदृश्यमान पृथ्वी-रूप में शोभा पा रहे हैं। **ब्रह्मा—पुरुष** और **प्रकृति** से चैतन्य-प्रवाह और वस्तु संग्रह कर **जगत् का प्रकाश** कर रहे हैं। सर्वतोभाव से आत्म-वश करने का नाम है— **पालन। विष्णु**— परम चैतन्यावस्था से **जीव** और आत्म-रूप में **माया** के मध्य-गत होकर **माया की सकल विभूति** को अर्थात् **भूत, इन्द्रिय** और **मन** आदि को सजीव रखकर आत्म-वश कर रहे हैं और **शिव**— ईश्वर की वासना से उत्पन्न **उद्देश्य-रूपी जीव और जगत् का प्रकाश** करने के लिए **चैतन्य** और **सत्** को प्रयोजनानुसार अंश कर रूपान्तरित करते हैं।

साधक का संवाद

६. प्रकाशन

मैहर से आते समय मैं **प्रयाग-राज** में उतर गया था। सोचा बहुत दिन से **सङ्गम का स्नान** नहीं किया है, इस बार स्नान कर लिया जाए। फलतः गाड़ी से उतरकर मुसाफिरखाने में पड़ा रहा। वहाँ नींद कैसे लग सकती थी? सारी रात जागते ही बीती। सबेरा होने पर वहीं मुसाफिरखाने में हाथ-मुँह धोने आदि से छुट्टी पाकर एक एक्का किया और **बाँध** को चला।

प्रयाग कहने को तो **तीर्थ-राज** है; पर यहाँ उसके नाम के अनुरूप धर्म का वैसा जाग्रत-रूप, कम-से-कम, मुझे तो कभी नहीं दिखा। यदि प्रति वर्ष यहाँ **माघ में स्नान का मेला** न लगता होता, तो **तीर्थ-राज** होकर भी यह स्थान नगण्य ही रहता। **काशी, मथुरा, अयोध्या** और **हरिद्वार** इस प्रान्त के नगरों में धार्मिक रङ्ग-ढङ्ग में बहुत चढ़े-बढ़े हैं। वहाँ धर्म का जो जाग्रत रूप दिखाई देता है, उसका चिह्न तक **प्रयाग-राज** में नहीं है। इससे तो इस सम्बन्ध में **कानपुर** और **लखनऊ— तीर्थ-स्थान** न होकर भी धर्म के मामले में अपनी विशेषता रखते हैं। **कानपुर** तो **अयोध्या, मथुरा** की छटा दिखाया करता है, पर **लखनऊ** जो निर मुसलमानी नगर है, **धर्म-भावना** की एक ऐसी विशेषता रखता है, जो अपने ढङ्ग की अनुपम है। वहाँ के **चौक** में प्रति-मास जो **प्रदोष का अर्चन** इधर कुछ समय से चल पड़ा है, वह एक **अनूठा धार्मिक सङ्गठन** है, जिसका अनुकरण होना चाहिए। **लखनऊ** की इस प्रकार की बात का भी **प्रयाग** में अभाव है। ऐसी दशा में यह कैसे **तीर्थ-राज** हो सकता है? मैं इसी तरह की बातें मन में सोचता हुआ जा रहा था। मुझे ज्ञात तक न हुआ कि मैं कब **बाँध** पर पहुँच गया। यह तो जब एक्का खड़ा हुआ, तब मैंने जाना। एक्के से उतरकर एक्केवाले को पैसे दिए और **सङ्गम** की राह ली।

बाँध पर खड़े होकर जब मैंने इधर-उधर देखा, तब मेरी खिन्नता अपने-आप जाती रही। मेरी जहाँ तक निगाह जाती थी, एक **विराट् शून्य का दृश्य** था। उस पार **झूँसी के ध्वस्त किले** के ऊँचे-ऊँचे कगार थे, इधर **सङ्गम** की ओर उस पार **अरैल** था। इनके और बाँध के बीच में निर्जन-सा विस्तृत मैदान था, जिसके एक ओर **गङ्गा** और दूसरी ओर **यमुना** बहती हुई दिखाई दे रही थीं। यह एक ऐसा **अनूठा दृश्य** था, जैसा आज तक मैंने पहले कभी नहीं देखा था। **प्रयाग** कई बार आया हूँ, **सङ्गम** के तट पर बैठकर घण्टों **गङ्गा-यमुना** की क्षण-क्षण बदलनेवाली **सङ्गम-लीला की झाँकियाँ** लेकर स्वर्गीय सुख का अनुभव किया है, परन्तु आज **बाँध** पर से **सङ्गम** के जिस **विराट् रूप का दर्शन** किया, उससे मुझे अपनी ऊपर की सारी कल्पनाएँ निस्सार जँच गई और मेरे मुँह से सहसा निकल गया—क्यों न हो! **तीर्थ-राज** जो ठहरे। ऐसा **भुवन-मोहन स्वरूप** और किसका हो सकता है!

धीरे-धीरे **बाँध** से उतरकर **किले** के पास जाकर एक नाव की और इसके द्वारा **सङ्गम** पर

जाकर **स्नान** किया। **सङ्गम का स्नान** और सो भी **वैशाख** का महीना। क्या कहना है! **स्नान-ध्यान** कर जब मैं लौटकर **बाँध** पर आया, तब किसी ने पीछे से **'शर्माजी'** की आवाज लगाई। घूमकर देखा कि **गुरु दत्तात्रेय के मन्दिर** से **अवधूतजी** बुला रहे हैं—वही **अवधूतजी,** जिनके दर्शन **विन्ध्याचल** में हुए थे। निकट जाकर मैंने विनय के साथ उनको प्रणाम किया। बड़े स्नेह से पास बैठाकर उन्होंने कुशल पूछा। इसके बाद और भी बातें हुईं और सो भी इस ढङ्ग से मानो हम दोनों जन्म-जन्मान्तर के परम मित्र हों। उनके अपनेपन को देखकर मैं तो दङ्ग रह गया। **विन्ध्याचल** में कुल ५-६ घण्टे का साथ रहा होगा। और उस अवसर पर भी मुझसे उनकी उतनी अधिक बातचीत भी न हुई थी कि इस प्रकार हम दोनों परस्पर मिलते होते। **अवधूतजी** को जब यह ज्ञात हुआ कि मैं इस समय यों ही घूम-फिर रहा हूँ, तब उन्होंने बहुत ही मधुर भाव से कहा—तो चलो **शर्मा,** आज मेरा ही आतिथ्य स्वीकार हो। मैं तुमसे कुछ बातचीत करना चाहता हूँ। **विन्ध्याचल** में तो तुम ठहरे नहीं और जब तक रहे, ऐसा व्यस्त रहे कि तुमसे बातचीत करने का अवसर ही न मिल सका।

मैंने हाथ जोड़कर बहुत ही विनय के साथ कहा—यह तो मेरे सौभाग्य की बात है। आपका प्रसाद मिलेगा। मैं तो कृतार्थ हो गया।

अवधूत जी उठ खड़े हुए। नीचे आकर एक एक्का किया और **अवधूतजी** को बिठाकर हम भी बैठ गए। मार्ग में वैसी कोई बातचीत नहीं हुई। अन्त में जब एक्का यथा स्थान पहुँच गया, तब एक्केवान ने पूछा—**बाबूजी,** कहाँ जाना होगा?

अवधूतजी ने कहा—'ठीक है। यही उतरेंगे' और हम दोनों आदमी वहीं उतर पड़े। एक्केवाले को पैसे दे चुकने के बाद मैंने **अवधूतजी** का अनुसरण किया। दो-एक गलियों को पार करने के बाद **अवधूतजी** एक मकान के दरवाज़े पर जाकर खड़े हो गए। उन्होंने कहा—**शर्माजी,** यही **भट्टजी** का घर है। इस नगर में यही इस समय **प्रमुख साधक** हैं। इनके पूर्वज तो और भी **ऊँचे दर्जे के साधक** थे।

इतने में एक **वृद्ध सज्जन** घर के भीतर से आते दिखे। बाहर आते ही उन्होंने **अवधूतजी** को बड़ी आवभगत के साथ लिया और झट कमरा खोलकर उन्हें ससम्मान भीतर लिवा ले गए। कुशल-प्रश्न के बाद **भट्टजी** ने पूछा—आप कब पधारे?

'चार दिन से यहाँ हूँ। **रामप्रसाद** के यहाँ ठहर गया।' यह कहकर उन्होंने **भट्टजी** को मेरा परिचय दिया। इसके बाद कहा—आज **रामप्रसाद** के यहाँ पूजन होगा। तुम्हें बुलाने आया हूँ। अभी सीधा **सङ्गम** से आ रहा हूँ। मैं उनको वचन दे आया हूँ कि **भट्टजी** को साथ लेकर यथा समय आ जाऊँगा।

'परन्तु आप तो जानते हैं कि मैं—'

'मैं सब जानता हूँ। आपको मेरा कहना मानना पड़ेगा।'

'आपकी आज्ञा सिर पर है, परन्तु एक बात है।'

'वह कौन-सी बात है?'

'वह यह कि आजकल लोग **विधि-विधान** की परवा नहीं करते और कितने तो कुछ जानते भी नहीं हैं। ऐसे लोगों के साथ **अर्चन** करना मैं तो अनुचित समझता हूँ।'

अवधूतजी ने हँसते हुए कहा—परन्तु यह

अवस्था आप लोगों की ही कृपा का फल है। यदि आप लोग अपनी-अपनी मण्डली के लोगों को ठीक-ठीक बताए रहते, तो यह दशा ही न आती।

भट्टजी ने कहा—कोई जानना चाहे, तब बताया जाए या यों ही गली-गली बताता फिरे। कुछ करने-धरने की किसी में **श्रद्धा** ही नहीं। लोग **कान फुँकवा लेना** ही अब अलं समझते हैं। न कोई **पुरश्चरण** करता है, न नियम से **पूजा-पाठ** ही करता है।

अवधूतजी बोले—किसी अंश तक आपके कथन को मान सकता हूँ, परन्तु यह कहकर आप लोग अपने दोष से बच नहीं सकते। आप तब कान ही ऐसों के क्यों फूँकते हैं? आज ऐसे **गुरु** कहाँ हैं, जो अपने शिष्यों को निरालस होकर **सविधि दीक्षा** देते हों और उन्हें उनकी स्थिति के अनुसार **पूजा-पाठ** बताते हों?

मैंने कहा—**महाराज,** यह हाल तो सभी जगह है। इसमें दोष किसी का नहीं है, समय ही ऐसा है।

अवधूतजी ने कहा—हाँ, **शर्माजी,** एक प्रकार से तुम्हारा कहना ठीक है और इसी से मैं किसी से भी दुराव नहीं करता। **अभिषिक्त** है, **दीक्षित** है या केवल **उपदिष्ट** है, मैं इसकी खोद-विनोद नहीं करता। **जगदम्बा** का जो भी **नाम-स्मरण** करता है, उसको देखकर ही मैं पुलकित हो जाता हूँ, परन्तु **भट्टजी** वह सब पसन्द नहीं करते। यदि **अभिषिक्त** न होगा, तो ये उससे बात तक नहीं करेंगे।

भट्टजी बोले—हाँ **महाराज,** मेरा तो यही नियम है। **गुरु का आदेश** ही ऐसा है।

'गुरु का आदेश सर्वदा मान्य है, परन्तु क्या **गुरुदेव** ने यह भी आदेश दिया है कि यदि यह मार्ग विनष्ट होने लगे, तो भी चूँ न करना। **गुरुदेव** के समय में आज का हाल कहाँ था और जाने दो, **बड़े भट्टजी** के समय में उनके पास कितने साधक आते थे और अब कितने आते हैं? इन्हीं कुछ दिनों में कितना परिवर्तन हो गया?'

'तो इसमें मेरा क्या दोष है? मैं तो देखता हूँ कि जब से **अँगरेजी का प्रचार** हुआ है, कोई **धर्म की बात** नहीं करता।'

'मैं तो आपसे सहमत नहीं हूँ। बहुत से **अँगरेजी पढ़े-लिखे लोग** और अच्छे पढ़े-लिखे लोग मार्ग में हैं और बड़ी निष्ठा के साथ **अर्चन** आदि करते हैं। यह अँगरेजी पढ़ने का दोष नहीं है। दोष वस्तुतः है हमारी **गोपनीयता** का। हम इसे इतना **गोपनीय** रख रहे हैं कि इस बात का डर है कि कहीं **धर्म का ही गोपन** न हो जाए। इससे यह हमारा कर्तव्य है कि जिन घरानों में इसका प्रचार रहा है, उन पर से इसका प्रभाव न हटने दें और जो **धर्मवान् व्यक्ति** मिलें, उनसे इस **मार्ग की चर्चा** करें और इसका **रहस्य** उन्हें बतावें।

'सो यह सब मेरे मान की बात नहीं। लोग मुझे जान जाएँगे और मेरी बड़ी बदनामी होगी। मैं बड़े झगड़े में पड़ जाऊँगा।'

'तो यह क्यों साफ-साफ नहीं कहते? अंग्रेजी को क्यों दोष देते हो? परन्तु **भट्टजी, शक्ति के साधकों** को यह कायरता शोभा-जनक नहीं है। एक **वीर** के लिए यह कहना कि लोग उसकी निन्दा करेंगे, अतएव वह **धर्म की बात** नहीं करेगा, कितना लज्जा-जनक है?'

'आप चाहे जो कहें, कायर ही सही, पर जो काम मैंने आज तक नहीं किया, उसे अब क्या करूँगा? मेरा तो पार हो आया है।'

'यह भी ठीक नहीं कह रहे हो। अभी बीसों वर्ष मुझसे छोटे हो।'

मैं चुपचाप दोनों महानुभावों का वार्तालाप सुन रहा था। **अवधूत महाराज** जो बात कह रहे थे, उसकी ओर **भट्टजी** ध्यान नहीं दे रहे थे। वे दे भी नहीं सकते थे, अतएव अधीर होकर मैंने **अवधूतजी** से कहा—तो **महाराज,** आप क्या चाहते हैं?

'मैं? मैं चाहता हूँ कि **शाक्त शाक्त बनें**—कायर न बनें। **सदाशिव** ने **भ्रातृ-भाव** और **मातृ-पूजा** का जो उपदेश किया है, उसे केवल **चक्र** के भीतर ही व्यावहारिक रूप न दिया जाए किन्तु वह **शाक्तों के जीवन का अङ्ग** बने। मैं चाहता हूँ कि देश में दूसरे सम्प्रदाय जिस तरह फल-फूल रहे हैं, वैसे ही हमारा **शाक्त-धर्म** भी फले-फूले।' यह कहकर **अवधूतजी** चुप हो गए।

मैंने विनम्रता से कहा—**महाराज,** तब तो आप गलत आदमी चुन रहे हैं। **भट्टजी** पुरानी परिपाटी के आदमी ठहरे। यह इनके मान का नहीं है। इसके लिए तो नई पीढ़ीवालों को घेरिए, **सभा** बनाइए, **प्रेस** खोलिए, **पत्र** निकालिए, **प्रचारक** तैयार करिए।

अवधूतजी बीच में ही बोल पड़े—हाँ **शर्मा,** ठीक कहते हो। यह **प्रचार का युग** है। घर बैठकर जिज्ञासुओं की प्रतीक्षा करने से काम नहीं बनेगा। अगर हमें जीवित रहना है, तो सभी कुछ करना पड़ेगा। जरा देखो तो, जिस **शाक्त-धर्म** के एक-एक तत्त्व को ग्रहण कर देश में अनेक सम्प्रदाय उन्नति कर रहे हैं, वही **शाक्त-धर्म** आज हम साधक कहे जानेवालों की कोठरियों में बन्दी पड़ा हुआ अपनी अन्तिम साँसें गिन रहा है। कितना हृदय विदारक दृश्य है!'

'अन्तिम साँसें गिन रहा है? **महाराज,** यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही है और यह भी मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि **शाक्तों** के तत्त्वों को दूसरे सम्प्रदायवालों ने ग्रहण किया है!'

'तुम कैसे समझोगे? तुम तो बङ्गालियों के बीच में रहते हो, जहाँ **माँ की घर-घर पूजा** होती है और जहाँ **भ्रातृ-भाव** सामाजिक जीवन का अङ्ग बन गया है। अब रही दूसरी बात, सो **शाक्तों** के **पाँच तत्त्व—गुरु-मन्त्र** आदि किस सम्प्रदाय में नहीं है? आज भारत का कौन ऐसा धार्मिक समाज है, जिस पर **शाक्त-धर्म** के तत्त्वों का प्रभाव नहीं पड़ा है।'

'अच्छा! आपका इन **तत्त्वों** से मतलब है। मैंने कुछ दूसरा ही आशय लिया था।'

'तुमने उन **तत्त्वों** को समझा था। उन **तत्त्वों** के ग्रहण करने का अधिकार सब किसी को नहीं है। उसके लिए बड़ा सौभाग्य चाहिए। इसी से तो मुझे दुःख होता है कि जिनके हाथ में वह परम पुनीत थाती है, उसे वे दाबे बैठे हैं। यह इसी का परिणाम है कि आज के साधक **तर्पण-चर्वण** करना भी नहीं जानते, **देवता की पूजा** करना तो अलग रहा।'

'यह तो **अधिकारी** होने पर है। जो जहाँ तक **अधिकारी** है, वह वहाँ तक पा जाता है।'

'परन्तु यदि हमारे प्रयास से उनके **अधिकार की वृद्धि** हो जाए, तो वैसा प्रयास करना क्या अनुचित है? यदि सभी साधक यह जान जाएँ कि उनकी **पूजा का यह रहस्य है कि साधक अपने मानव-भाव को देव-भाव में परिणत करे, यहाँ तक कि आहार, निद्रा, भय आदि शारीरिक एवं मानसिक विकारों में भी वह अपने को देव बनावे,** यदि इसका अनुभव शाक्तों को आरम्भ में करा दिया जाए, तो इसमें किसी की क्या हित-हानि होगी?'

'हाँ **महाराज,** यह तो अच्छी ही बात होगी। इस दृष्टि-कोण से मैंने आपका कथन नहीं लिया था। क्षमा कीजिएगा।'

'आप क्या, मेरे मतलब की ओर कोई भी ध्यान नहीं देता है। मैं केवल इतना ही चाहता हूँ कि **शाक्त लोग वास्तव में शाक्त बनें। शाक्त-मार्ग—मानव की पशुता छुड़ाकर, उसे देवता बनाने का प्रयत्न करता है।** वह जो कुछ करता है, **धर्म-भावना** से करता है। **भोजन** करता है, तो वह **यज्ञ** करता है। वह **स्त्री** को **भोग का साधन** नहीं बनाता है, किन्तु उसको भी **देवी का रूप** प्रदान कर अपने से ऊँचे पद पर ही अधिष्ठित करता है। **पशुता** को त्यागे रहने का **शाक्त-धर्म** में जो आग्रह है, उसका बोध आज कितने साधकों को है?'

'हाँ **महाराज,** आपका कथन सर्वथा यथार्थ है। इस प्रकार की **शिक्षा** का तो आज सर्वथा अभाव है। ऐसा प्रयत्न तो अवश्य होना चाहिए।'

'मैं तो जहाँ जाता हूँ, लोगों को बराबर खटखटा देता हूँ, परन्तु इन **गोपनीयता-वादियों** के आगे मेरी एक भी नहीं चल पाती है। इन लोगों की **साधना** तो **पर्व-पूजा** तक ही सीमित है। साल में एक-दो बार आठ-दस साधकों को बुलाकर **चक्र-पूजा** क्या कर ली, बड़ा भारी मोर्चा सर कर लिया। यह नहीं देखते कि उनकी ये भिन्न-भिन्न **मण्डलियाँ** आज जिस दयनीय दशा को प्राप्त हैं, उसका मूल कारण यही है कि इनका अन्य **मण्डलियों** से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। इसी नगर में कई **मण्डलियाँ** हैं और मजा यह कि एक **मण्डलीवाला** दूसरी **मण्डलीवाले साधक** से परिचित तक नहीं। यह कितनी बड़ी विडम्बना है! जिस धर्म का मूल सिद्धान्त ही यह है कि शाक्त को **'आत्मीय'** माने, उस धर्म के अनुयायी यहाँ तक हो जाएँ कि एक दूसरे को जानते तक न हों! मैं तो यह अवस्था नहीं रहने दूँगा। मेरे लिए असह्य है यह अवस्था! **भट्टजी,** आज **रामप्रसाद** के यहाँ पूजन में आपको चलना पड़ेगा। यह आपसे मैं फिर कहता हूँ।'

भट्टजी ने कहा—**महाराज,** मैंने तो पहले भी इनकार नहीं किया था। आप जो आदेश करेंगे, वह शिरोधार्य ही होगा।

इतने में एक सज्जन वहाँ आकर खड़े हो गए। वे इस ढङ्ग से आए जैसे कोई अपने घर आता है। मैंने समझा, **भट्टजी** के कोई होंगे परन्तु **अवधूतजी** ने पूछा—तुम कैसे आए?

आगन्तुक ने कहा—**महाराज,** मैं तो आपको बुलाने आया हूँ। **चाचाजी** खुद आते, परन्तु वे प्रबन्ध करने में लगे हैं। आपके आज्ञानुसार मैं सबसे कह आया हूँ।

अवधूत जी ने कहा—मैं **सन्ध्या-वन्दन** आदि करके **भट्टजी** को साथ लेकर ठीक समय पर आऊँगा। तुम चलो।

आगन्तुक के चले जाने पर हम लोग भी उठे। **सन्ध्या** भी हो रही थी। **सन्ध्या-वन्दन** आदि से छुट्टी पाने पर **अवधूतजी भट्टजी** को तथा मुझको साथ लेकर **रामप्रसादजी** के यहाँ चले। मार्ग में उन्होंने मुझसे कहा—**शर्माजी,** यह **मुंशी** बड़ा भक्त है, **पूजा** भी सविधि करता है। इसके यहाँ की व्यवस्था देखकर आपको खुशी होगी।

मैंने कहा—यह सब आपकी कृपा है।

अवधूतजी ने कहा—नहीं भाई। तुम तो **बङ्गाल के शाक्तों** के बीच के हो। मैं जानता हूँ, **बङ्गाली लोग— माँ की पूजा** बड़ी श्रद्धा से करते हैं, साथ ही **क्रम** का भी पूरा ध्यान रखते हैं। यह बात यहाँ कहाँ? पर **मुंशी रामप्रसाद** जैसे

कुछ भक्तों के यहाँ इस देश में भी माँ की बहुत अच्छे ढङ्ग से **पूजा** होती है।

इस प्रकार बातचीत करते हुए हम लोग **मुंशीजी** के घर पहुँच गए। दरवाजे पर ही **मुंशीजी** ने **अवधूतजी** का स्वागत किया और हम सबको भीतर लिवा ले गए। आँगन में पहुँचकर उन्होंने **अवधूतजी** के पैर धोए और दालान में ले जाकर एक सुन्दर आसन पर बिठाया। हम लोग भी पैर धोकर **स्वामीजी** के पास के आसनों पर बैठ गए। इसके बाद **पूजा** आरम्भ हो गई। **पूजा** के बीच में जो दूसरे लोग आए, वे सब वहाँ आकर क्रम से आसनों पर बैठते गए। **पूजा** के समाप्त होते-होते वह दालान भर गई। **आरती** होने के बाद **पुष्पाञ्जलि का दृश्य** तो और भी अनूठा दिखा। वहाँ एकत्र स्त्री-पुरुषों ने एक साथ मिलकर जितने अच्छे ढङ्ग से **पुष्पाञ्जलि** पढ़ी, उसे श्रवण कर मेरा तो रोम-रोम पुलकित हो उठा और उसके बाद **प्रसाद-ग्रहण** के समय की **वन्दनाएँ** तथा **शान्ति-पाठ** आदि जो भी हुए सब हिन्दी में और ऐसे कि मेरे आनन्द का ठिकाना ही न रहा। **विसर्जन** के बाद मैंने कहा—ऐसा **आनन्द** तो मुझे पहले कभी नहीं मिला। यहाँ तो निराले ठाठ-बाट हैं।

अवधूतजी ने कहा—यह सब **भक्त-प्रवर रामप्रसाद** की महिमा है।

रामप्रसादजी ने हाथ जोड़कर कहा—यह आप क्या कहते हैं! यह सब आपका प्रताप है। आपने ही तो हम लोगों के उद्धार के लिए यह मार्ग बताया है।

'तुम समझे नहीं **शर्माजी** की बात। उनका मतलब **वन्दनाओं** से है, जो **हिन्दी** में की गई है। क्यों **शर्मा जी?**'

'हाँ **महाराज,** यह तो बिलकुल ही नई बात है। यही नहीं, यह इतनी उपयोगी है कि इसका **व्यापक प्रचार** होना चाहिए। इससे लोगों का **विशेष रूप से लाभ** होगा। वे समझेंगे तो कि वे क्या करते हैं।'

'मैं तो सोच रहा हूँ कि **कवच, स्तोत्र, सहस्र-नाम** आदि सभी **लोक-भाषा** में हो जाएँ। ऐसा होने से उनका बड़ा कल्याण होगा, जो **संस्कृत** नहीं जानते।'

इस प्रकार बातचीत करते हुए हम लोग बाहर आए। जब सब लोग अपने-अपने घर चले गए, तब **अवधूतजी** ने **मुंशीजी** से कहा—कल सबेरे की गाड़ी से मुझे **विन्ध्याचल** जाना है। एक काम है।

यह कहकर मुझे लिए हुए वे अपने ठहरने के स्थान को चले। मैंने भी वहीं विश्राम किया। सबेरे **अवधूतजी** ने मुझे जगाया। उन्होंने कहा—**शर्माजी,** चलो न **विन्ध्याचल। जगदम्बा के दर्शन** कर आओ।

मैंने कहा—आज्ञा शिरोधार्य है।

ठीक समय पर हम **विन्ध्याचल**-स्टेशन पर जा उतरे। वहाँ **अवधूतजी** की अभ्यर्थना के लिए पहले से ही चार-पाँच आदमी उपस्थित थे। वेष-भूषा से वे किसी रईस के सरदार से जान पड़ते थे। **अवधूतजी** के प्लेटफार्म पर पैर रखते ही उन लोगों ने आकर उनके चरण-स्पर्श किए और बड़ी नम्रता से कुशल-प्रश्न किया। **अवधूतजी** ने अपने सहज मधुर भाव से समुचित उत्तर देते हुए पूछा —**याग** ठीक तरह हो रहा है न? **स्वामीजी** को कहाँ ठहराया है?

उन **सरदारों** में से एक ने कहा—आपके आशीर्वाद से सारा कार्य यथा-विधि ही हुआ है। आज **पूर्णाहुति** होगी। **सरकार** आपकी बड़ी प्रतीक्षा कर रहे हैं। **स्वामीजी** भी **काशी-नरेश के**

बाग में ही ठहरे हैं। वहीं **सरकार** भी हैं और वहीं **यज्ञ-शाला** भी है। आपके लिए मोटर बाहर खड़ी है।

अवधूतजी ने कहा—बहुत ठीक। पर अभी **गङ्गा-स्नान** मैं करूँगा। उसके बाद **माँ के दरबार** में जाऊँगा। तुम लोग चलो। घण्टे-डेढ़ घण्टे में आ जाऊँगा। **सरकार** से कह देना।

उसी **सरदार** ने बहुत ही विनय के साथ फिर कहा—परन्तु **सरकार** ने कहा था कि **महाराज** को सवारी में यहीं लिवा लाना।

अवधूतजी ने हँसकर कहा—परन्तु **राजा के दर्शन** बिना स्नान किए कैसे कर सकता हूँ। कह देना नाराज नहीं होंगे।

यह कहकर **अवधूतजी** आगे बढ़े। स्टेशन से बाहर आकर हँसकर वे अपनी राह लगे। मैं पीछे-पीछे था। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि मार्ग में **अवधूतजी** ने इस **याग** और इन **राजा** की चर्चा क्यों नहीं की। मुझे चुप देखकर **अवधूतजी** ने कहा—**शर्मा जी,** मैंने जानबूझकर ही तुमसे न **प्रयाग** में, न **मार्ग** में ही यह बताया कि मैं **विन्ध्याचल** क्यों चल रहा हूँ। मुझे इस **याग का निमन्त्रण** यथा समय मिला था, पर मैं नहीं जानता था कि **स्वामीजी** भी यहाँ आएँगे। वास्तव में मैं तुम्हें इन्हीं के दर्शन कराने के लिए यहाँ लाया हूँ। ये मेरे **गुरु-भाई** हैं। इनसे और **राजा साहब** से भी मिलकर तुम प्रसन्न होगे।

मैंने कहा—यह आपकी मुझ पर कृपा ही है, जो ऐसे **साधकों का दर्शन** प्राप्त होगा। कभी-कभी तो मैं यह सोचने लगता हूँ कि सब झंझट छोड़-छाड़कर आप जैसे **महात्माओं** के साथ रहकर इधर-उधर भ्रमण किया करूँ।

'परन्तु **शर्माजी,** यह तुम्हारे जीवन की सबसे बड़ी भूल होगी। वह झंझट तो छूटेगा नहीं, एक दूसरा झंझट और ऊपर से लद जाएगा। इससे जहाँ हो, वहीं बने रहना ठीक है।'

इस तरह बातें करते हम **गङ्गा जी** के तट पर पहुँचे। **अवधूतजी** का सारे मार्ग में कितने ही लोगों ने बड़े आदर के भाव से अभिवादन किया। **गङ्गाजी** पर भी वही हाल रहा। **स्नान-पूजा** कर **मन्दिर** में पहुँचे। वहाँ उनके आगमन की सूचना पहले ही पहुँच चुकी थी। **पण्डितों, पुजारियों** आदि ने उन्हें **माँ के दर्शन कराए**। मैं पहले से ही जानता था कि **अवधूतजी** का **विन्ध्याचल** में कितना आदर है, अतएव उनके **स्वागत - सत्कार** को देखकर मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ।

माँ के दर्शन पर तथा भक्तों से मिल-जुलकर **अवधूतजी** मन्दिर से नीचे उतरे। वही **सरदार** लोग एक ओर आते हुए दिखाई दिए। समीप आकर विन्रमता से कहा—**सरकार** ने फिर सेवा में भेजा है। **पूर्णाहुति** का समय आ गया है।

अवधूतजी ने मुस्कराकर कहा— मैं तो वहीं चल रहा हूँ। आओ।

थोड़ी ही देर में हम लोग **काशी-नरेश के बाग** में पहुँच गए। फाटक के भीतर घुसते ही **यज्ञ-शाला** सामने ही दिखाई दी। **हवन** हो रहा था। हम भी वहीं गए और जहाँ **स्वामीजी** बैठे थे, जाकर बैठ गए। **अवधूतजी** ने **स्वामीजी** को मेरा परिचय दिया। उन्होंने एक बार मेरी ओर देखा, पर कुछ कहा नहीं।

यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि **स्वामीजी** वेश-भूषा से **स्वामी** नहीं थे अर्थात् उनकी वेश-भूषा हम गृहस्थों जैसी ही थी, परन्तु रूप-रेखा से अवश्य **स्वामी** जान पड़ते थे। उम्र में **अवधूतजी** से बड़े थे, तो भी वे इनकी

अपेक्षा अधिक स्वस्थ तथा तेजस्वी जान पड़ते थे। उनका मुख प्रसन्नता से दमक रहा था और उनकी दृष्टि में मधुरता झलकती थी। मैं तो उन्हीं को देखता रह गया।

हवन हो रहा था। **पण्डित लोग** जिस तन्मयता से अपने कार्य में संलग्न थे, उससे वहाँ का वातावरण अलग स्वर्गीय दृश्य दिखा रहा था। **पूर्णाहुति** का समय आ गया था। **राजा साहब** भी आ गए। उन्होंने **अवधूतजी** के चरण-स्पर्श किए और कहा—मुझे पूरा विश्वास था कि आप अवश्य कृपा करेंगे।

बातचीत के सिलसिले में **अवधूतजी** ने **राजा साहब** को मेरा परिचय दिया। **राजा साहब** ने मुझसे भी प्रीति-पूर्वक बातचीत की। **हवन** की समाप्ति के बाद **राजा साहब** ने **अवधूतजी** से कहा— अब क्या आज्ञा है?

'अब तो सब कार्य **जगदम्बा की कृपा** से निर्विघ्न समाप्त हो गया। आप विश्राम करें। मैं **निशा-पूजा** की व्यवस्था करने जा रहा हूँ।'

इस पर **राजा साहब** अपने स्थान को चले गए और हम लोग **स्वामीजी** के साथ उनके निवास-स्थान पर आए। **स्वामीजी** ने **अवधूतजी** से कहा—कुछ खाओ-पियो। बड़ा अति-काल हो गया है।

'आप तो जानते है, मैं एक ही बार भोजन करता हूँ।'

'परन्तु फल-फूल खाना-पीना तो भोजन नहीं है। फिर **शर्माजी** तो तुम्हारी तरह **अवधूत** नहीं हैं। उस आलमारी में देखो। तुम दोनों के लिये खाने का सामान रक्खा होगा।'

अवधूतजी के संकेत पर मैंने आलमारी खोली। उसमें फलों और मिष्ठान्नों का ढेर लगा था। कुछ फल निकालकर मैंने **स्वामीजी** को तथा **अवधूतजी** को दिए और कुछ अपने लिए ले लिए।

फल खाकर हम लोग बैठे ही थे कि एक **दरबान** ने आकर **अवधूतजी** से कहा—**महाराज,** फाटक पर एक **ब्राह्मण** आए हैं। आपके दर्शन करना चाहते हैं। अपना नाम **पण्डित गङ्गानारायण शास्त्री** बतलाया है।

अवधूत जी ने कहा—आने दो।

स्वामीजी ने पूछा—ये **शास्त्री** कौन है?

अवधूतजी ने कहा—मैं तो नहीं जानता। यहाँ तो इस नाम का कोई **पण्डित** नहीं है। बाहर के ही होंगे।

इतने में **दरबान** के साथ **शास्त्रीजी** आते दिखाई दिए। **शास्त्रीजी** की वेश-भूषा नई चाल की थी। पगड़ी की जगह पर गोल टोपी थी। सुनहली कमानी का चश्मा लगाए हुए थे। हाथ में एक बेत था। कलाई में घड़ी बँधी हुई थी और पैरों में नए कट की स्लीपरें। आते ही उन्होंने **अवधूतजी** को दूर से ही नमस्कार किया और वहाँ पर बिछी हुई चटाई पर बैठ गए। उन्होंने हम लोगों की ओर देखा भी नहीं।

अवधूतजी ने उनके अभिवादन का कोई उत्तर नहीं दिया था, इससे **शास्त्रीजी** का चेहरा कुछ तमतमा-सा उठा और झुँझलाकर उन्होंने संस्कृत में कहा—क्या आपके दरबार में विद्वानों का ऐसा ही आदर होता है?

अवधूतजी ने हिन्दी में ही उत्तर दिया—आपसे यह बात किसने कही थी? **शास्त्रीजी,** आप धोखा खा गए हैं।

शास्त्रीजी बोले—आप ठीक कहते हैं। यह तो प्रकट ही है। पर मैं आपसे एक विषय पर बातचीत करना चाहता हूँ। आपके आदेश पर इस **पावन-पीठ** में जो हत्या-काण्ड हुआ है,

उसका समर्थन आप कैसे करते हैं?

अवधूतजी हँसकर बोले—ऐसी बातचीत करनी है, तो किसी **शास्त्री** के पास जाइए। रही हत्या-काण्ड की बात, सो आपका कथन सर्वथा निराधार है।

'मैंने सुना है कि यहाँ जो **शत-चण्डी** हुई है, आपके आदेश से हुई है। इस सिलसिले में १० बकरे मारे जा चुके हैं और आज भी एक मारा जाएगा। क्या यह सब असत्य है?'

'अच्छा, अब मैं समझा। **शत-चण्डी** और उसमें किए गए **बलिदानों** के लिए मैं जिम्मेदार हूँ। परन्तु मैं विनम्रता से आपसे यह जानना चाहता हूँ कि आप यह सब मुझसे इस प्रकार क्यों पूछ रहे हैं?'

'मैं यह सब **अधर्म** समझता हूँ। मैंने इस बात की प्रतिज्ञा की है कि ऐसे हत्या-कर्मों को जैसे हो सकेगा, रोकूँगा। मैं इधर दस दिन के लिए बाहर चला गया था। जब लौटकर आया तब सुना कि **अवधूतजी** के आदेश से यहाँ दस बकरे मार डाले गए और ग्यारहवें के मारे जाने की तैयारी हो रही है। मैं यह सब नहीं होने दूँगा, इसे आप समझ लें।'

अवधूतजी ने अपनी स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ कहा—आप तो **विद्वान्** हैं। आपको तो किसी के **धर्म-कार्य** में इस प्रकार विघ्न नहीं डालना चाहिए।

'आप इसे **धर्म-कार्य** कहते हैं?'

'मैं ही नहीं, हमारा **शास्त्र** भी ऐसा कहता है। यह **शाक्त-धर्म** का **एक प्रमुख धर्म-स्थान** है। दूसरे धर्मवालों को यहाँ **शाक्तों के धर्म-कार्य में विघ्न** डालने का कोई अधिकार नहीं है। यदि मेरे इस निवेदन से आपका समाधान नहीं है, तो इस प्रसङ्ग की आगे चर्चा करना बेकार है।'

शास्त्री जी उठ खड़े हुए। उन्होंने कठोर स्वर में कहा—मैं पहले से ही जानता था कि आप ऐसा कहेंगे, परन्तु दलील निर्बल है। यह स्थान सारी हिन्दू-जाति का है—एक-मात्र **शाक्तों** का ही नहीं है और हिन्दुओं का बहुमत नहीं चाहता कि उनके धर्म-स्थानों में धर्म के नाम पर पशुओं का वध किया जाए।

और इस तरह बकते-झकते वे चले गए। उनके चले जाने पर **स्वामीजी** ने कहा—ये **शास्त्रीजी** तो बड़े विलक्षण जान पड़ते हैं!

अवधूतजी ने कहा—विलक्षण क्या हैं, कोरे पेटू पण्डित हैं! क्या आपको पता नहीं है कि बहुत से हमारे ऐसे शास्त्री इसी बात का वेतन पाते हैं कि वे जगह-जगह **पीठ-स्थानों** में जाकर जैसे बने, वैसे **बलि-प्रथा** को रोकें? ये भी उन्हीं में से एक हैं।

यह सुनकर **स्वामीजी** चुप हो रहे और मुझे तो ऐसे शास्त्रियों का भेद पहले से ही ज्ञात था।

थोड़ी देर के विश्राम के बाद **अवधूतजी** ने **स्वामीजी** से कहा—'अब **निशा-पूजा** का प्रबन्ध करना है। **जगदानन्द** ने उसकी व्यवस्था का भार अपने ऊपर लिया था। जाकर देखता हूँ कि उसने क्या किया है।' यह कहकर वे उठ खड़े हुए।

मैंने पूछा—क्या मैं भी चलूँ?

'नहीं, नहीं, आप बैठकर **स्वामीजी** से बात-चीत करें। विशेष कर इसी के लिए तो मैं आपको यहाँ लाया हूँ।'

अवधूतजी के चले जाने पर **स्वामीजी** ने कहा—**अवधूतजी** आपकी बड़ी प्रशंसा करते थे। वे आपका बहुत स्नेह करते हैं। उनसे यह जानकर कि आपको धर्म से बड़ा अनुराग है, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

मैंने कहा—**स्वामीजी,** यह आप महात्माओं की विशेष दया है, जो अपने भक्तों का इस प्रकार उत्साह बढ़ाते रहते हैं। **धर्मानुराग** जो कुछ है, वह **गुरुदेव का प्रसाद** समझना चाहिए।

'आप बहुत ठीक कहते हैं। **गुरु की कृपा से ही तत्त्व का ज्ञान** होता है। इस मार्ग में इस बात की जरूरत है कि अपनी **साधना का क्रम** भङ्ग न होने दे। **गुरु-प्रदत्त मन्त्र की शक्ति का विकास** रुकने न पावे।'

मैंने पूछा—सो कैसे **स्वामीजी?**

'गुरु-प्रदत्त मन्त्र की शक्ति की धारा का आदि स्रोत सदाशिव की आत्म-शक्ति है। वहीं से वह अटूट बहती चली आ रही है। गुरु से प्राप्त होने पर जप का अभ्यास न होने से, उस शक्ति से उस शक्ति की धारा का विकास रुक जाता है। अतएव **मन्त्र का जप** बराबर करने से वह **चैतन्य** रहेगा और उसकी **शक्ति का विकास** भी होगा।'

'और **पूजा-पाठ?**'

'वे तो उसके **प्रधान अङ्ग** ही हैं। वे भी किए जा सकें, तो फिर क्या कहना! परन्तु वह सब प्रति-दिन जीवन भर करते जाना सभी गृहस्थों के मान की बात नहीं है। इसी से मैं **मन्त्र के जप पर अधिक जोर** देता हूँ।'

'पूजा-पाठ क्या, मैं तो **जप** भी वैसा नहीं कर पाता।'

'परन्तु **शर्माजी,** यह तो ठीक नहीं है। कम-से-कम आप जैसे साधक को **पूजा-पाठ** भी नित्य करना चाहिए और **जप** तो प्रत्येक दशा में अनिवार्य है।'

'परन्तु **स्वामीजी, पाठ** तो किया भी जा सकता है, पर **पूजा** का नित्य करना कठिन है। वह अटपटी भी है। उसका **प्रातः-कृत्य** करना तो सचमुच मुझ जैसे के बल-बूते की बात नहीं है।'

'ऐसा तो नहीं है। **शास्त्र** में उसकी भी व्यवस्था कर दी गई है और कोई भी अपने **देवता का पूजा-पाठ** अपनी सुविधा के अनुसार कर सकता है। यही नहीं, उस उतनी **पूजा** से ही उसका पूरा कल्याण हो जाता है। केवल **भाव** चाहिए।'

'परन्तु **स्वामीजी,** वह **भाव** होना ही तो कठिन है। इसके सिवा उस **भाव** की कोई सीमा भी तो नहीं है।'

'एक दृष्टि से आपका कथन ठीक है। भक्त लोगों का इस सम्बन्ध में दूसरा ही दृष्टि-कोण है। उसमें कठिन शब्द के लिए स्थान नहीं है। तो भी आपके ही दृष्टि-कोण से इस पर विचार करता हूँ। **भाव का अभाव** किसी को नहीं होता। हाँ, न्यूनाधिक वह अवश्य रहता है, परन्तु आप पूर्णता को ही अपना लक्ष्य क्यों बनाते हैं? वह तो अन्तिम लक्ष्य है। प्रारम्भ से लेंगे तो न वह कठिन प्रतीत होगा, न असीम ही। **देवता की पूजा सारी-की-सारी भाव-मय है।**'

'सो कैसे **स्वामीजी?**'

'उदाहरण के लिए एक **भूत-शुद्धि** को ही लीजिए। यह क्या है? **भाव-योग** की एक रोचक क्रिया मात्र है। इसकी विधि में जो **भाव** है, वह अपने ढङ्ग का अनूठा है। साधक इसकी क्रिया को करके **इस भावना का अनुभव करता है कि उसने अपनी पूजा के लिए अपने शरीर का ऐसा संस्कार किया है कि वह एकदम दिव्य हो गया है और पूजा करने के लिए पूर्ण रूप से उपयुक्त हो गया है।** इसी प्रकार वह अपने पूजा-क्रम में सभी वस्तुओं को **मान्त्रिक संस्कारों से दिव्य रूप** प्रदान करके अन्त में उस सामग्री से **देवता की पूजा**

करना आरम्भ करता है और इस सारी प्रक्रिया में उत्तरोत्तर उसका **भाव** बढ़ता जाता है, यहाँ तक कि वह अपने को और अपने आस-पास के वायु-मण्डल को सर्वथा **देव-भाव** में ग्रहण करता है। वस्तुतः यह हमारी **पूजा** एक विशेष प्रकार का **योग** है, जिसे हम सुविधा के लिए **भाव-योग** कह सकते हैं।'

'परन्तु **स्वामीजी,** ऐसी **भावना की अनुभूति** तो सरल वस्तु नहीं है।'

स्वामीजी ने तुरन्त हँसकर उत्तर दिया—**भगवद्-प्राप्ति** का इससे भी सरल कोई उपाय है, सो मैं नहीं जानता। हम **योगियों** और **वेदान्तियों** की बात नहीं उठाऐंगे। **योग-साधना** कितनी दुस्साध्य है, यह सर्व-विदित है। **वेदान्तियों** की साधना को तो स्वयं **भगवान् कृष्ण** ने ही कहा है कि वह अति कठिन है। हम **भक्ति-साधना** को ही लेते हैं, जिसकी आज बड़ी महिमा है, परन्तु उस मार्ग के अनुयायियों में आज ऐसे कितने हैं, जो पूर्णता प्राप्त कर चुके हैं। उसकी **साधना-प्रणाली** के आदि-अन्त का आज तक ज्ञान नहीं हो सका है। उसका जो साहित्य उपलब्ध है, उससे तो यही ज्ञात होता है कि उसकी साधना की कोई सीमा नहीं है। बस, जीवन-भर **भक्ति** किए जाओ, पूर्णता को प्राप्त होने पर **भगवान्** अपने-आप आकर दर्शन देंगे परन्तु ऐसी बात **तान्त्रिक साधना** में नहीं है। इसकी तो मर्यादा बँधी हुई है। यह स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट कर दिया गया है कि इतने दिन तक इस **विधि से साधना** करने पर **उद्देश्य की सिद्धि** अवश्य होगी। इससे अधिक **सरल उपाय** और क्या हो सकता है?'

'आपका मतलब **पुरश्चरण** से है, परन्तु कितने ही लोगों को मैं जानता हूँ, जिन्होंने **यथा-विधि पुरश्चरण** किया है और उनका सारा प्रयत्न बेकार गया है।' मैंने कुछ दबते-दबते कहा।

'नहीं, नहीं, **शर्माजी,** सङ्कोच छोड़कर अपनी बात कहिए। आप ठीक कहते हैं। कितने ही **पुरश्चरण** सिद्ध नहीं होते और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, परन्तु यह प्रसङ्ग के बाहर की बात है। इस समय तो मैं यही कह रहा हूँ कि **तान्त्रिक साधना** दूसरी साधनाओं की अपेक्षा सरल है और ससीम भी है। रही उसके **सिद्ध** होने की बात, सो यह तो **साधक की क्षमता** पर निर्भर करती है।'

स्वामीजी की बात पूरी भी न हो पाई थी कि **राजा साहब** आते हुए दिखाई दिए। **स्वामीजी राजा साहब** को आते देखकर चुप हो रहे। मैंने उठकर **राजा साहब** को आसन दिया। **राजा साहब** ने बैठते ही पूछा— **अवधूत जी** नहीं दिखाई दे रहे हैं?

स्वामीजी ने कहा—आपके ही काम से गए हैं।

राजा साहब ने कहा—**अवधूत जी** मुझ पर बड़ी कृपा करते हैं। ऐसे निःस्पृह परोपकारी साधु कहाँ हैं! यह उन्हीं की प्रेरणा है कि यह कार्य इस प्रकार पूर्ण रीति से हो सका है। यही क्या? उन्हीं की कृपा से मैं आपको पा सका हूँ और जब आपने दया दिखाई ही है, तो इतनी और कृपा हो कि मेरा घर भी पवित्र हो जाए।

स्वामीजी ने कहा—मैंने तो श्रीमान् से पहले ही कह दिया है कि मैं साथ ही चलूँगा और पन्द्रह दिन तक वहाँ रहूँगा।

'मेरी एक और प्रार्थना है, मेरी ही नहीं, **रानी साहब** की भी है कि आज का **अर्चन** भी आप ही करें। मैं जानता हूँ कि इधर दस दिन

से आपको विश्राम करने का अवसर तक नहीं मिला है, परन्तु हम सबकी इच्छा है कि आपके ही हाथ से आज **प्रसाद** भी मिले।'

'इसमें मुझे कुछ भी कष्ट न होगा। **पूजा** करना तो हम लोगों का **नित्य का अभ्यास** है। मुझे तो **अहर्निश पूजा** में संलग्न रहने में ही सुख मिलता है।'

राजा साहब ने बड़ी प्रसन्नता से कहा—मैं जानता था कि आप मेरा अनुरोध मानेंगे।

यह कहकर वे मुझसे बातचीत करने लगे। कहाँ किससे **दीक्षा** ली, **बङ्गाल** और **आसाम** में **शाक्त-धर्म** की क्या दशा है, वहाँ कैसे-कैसे **साधक** हैं? **पूजा-अर्चन** वहाँ कैसे होता है आदि आदि अनेक प्रश्न पूछे, जिनका मैंने व्योरेवार उत्तर दिया। मेरी बातचीत से **राजा साहब** बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने इस बात का भी आग्रह किया कि जब आपने आकर इस प्रकार कृपा दिखाई है, तब यह परिचय स्थायी होना चाहिए।

मैंने कहा— मैं इसे अपना सौभाग्य मानता हूँ और जब-जब श्रीमान् का आदेश होगा या मुझे अवकाश मिलेगा, श्रीमान् के दरबार में पहुँच कर दर्शनों का लाभ प्राप्त करूँगा।

हम लोग बातचीत कर ही रहे थे कि **अवधूतजी** भी आ गए। **राजा साहब** ने उठकर उनका स्वागत किया। जब वे आसन पर बैठ गये, तब **राजा साहब** ने कहा—आप तो जब से पधारे हैं, बराबर दौड़ ही रहे हैं।

अवधूतजी ने हँसकर कहा—श्रीमान्, यह तो **धर्म** ही ठहरा।

हम सभी हँस पड़े। दूसरे विषयों की बातें थोड़ी देर तक होती रहीं। इसके बाद **राजा साहब** चले गए। उनके पीछे ही **दरबान** के साथ **लाला दुनीचन्द** आ उपस्थित हुए। उन्होंने हम सबको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और चटाई पर बैठते हुए कहा—**शर्माजी,** इस बार तो खूब ही दौड़ाया। **मैहर** के **स्टेशन मास्टर** से पता मिला कि **प्रयाग** गए हो। वहाँ दूकान के **मुनीम** से पता लगा कि **अवधूतजी** के साथ **विन्ध्याचल** गए हैं। दौड़ा आया। सौभाग्य की बात मिल गए। रात में गाड़ी मिलेगी। चलिए **कलकत्ता**। नहीं तो बड़े चक्कर में पड़ जाओगे। हमें हर हालत में कल **कलकत्ता** पहुँच जाना चाहिए।

उन्होंने ब्योरा दिया। मैं चुप था। **अवधूतजी** ने कहा— **शर्मा,** तो तुम यात्रा की तैयारी करो। गाड़ी तुम्हें यहाँ नहीं **मिर्जापुर** में मिलेगी।

मैं जाना नहीं चाहता था, पर लाचार था। यदि न जाता, तो भारी घाटा उठाना पड़ता। मैंने खेद के साथ कहा— **स्वामी जी** के और आपके इस **सत्सङ्ग** से वञ्चित होना पड़ रहा है। मैं तो न जाता, पर मामला बिना मेरे गए सुधरेगा नहीं।

स्वामीजी बोले— अभी तो यह पहली भेट-मुलाकात है। इसी को अन्तिम क्यों बनाए दे रहे हैं!

अवधूत जी जोर से हँस पड़े और मैं झेंप गया। **दोनों महात्माओं** को प्रणाम करके चलने लगा, तब **अवधूतजी** से कहा— **राजा साहब** से क्षमा माँगता हूँ। चलते समय भेंट नहीं कर सका।

यह कहकर मैं **मुनीमजी** के साथ हो गया। बाग के बाहर आकर एक्का किया और **मिर्जापुर** की राह ली।

(क्रमशः)

'दीपावली' - महोत्सव

❖ **'कुलज्ञ' स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती, ऋषिकेश (उ.प्र.)**

हिन्दू धर्म - शास्त्रों के अनुसार आषाढ़ शुक्ला एकादशी से कार्त्तिक शुक्ला एकादशी तक का समय 'चतुर्मास' (चार महीने) कहलाता है। यह समय देवताओं का 'सुषुप्ति-काल' माना गया है। इन दिनों में कोई भी दिव्य या शुभ कार्य — जैसे विवाह आदि नहीं किए जाते। इन दिनों 'असुर प्राण' रहते हैं। अर्थात् आसुरी भावों की प्रधानता रहती है।

कार्त्तिक कृष्णा चतुर्दशी को **'नरक-चतुर्दशी'** कहते हैं। इस रात्रि में दरिद्रता-रूपा 'अलक्ष्मी' का गमन होता है और दूसरे दिन 'अमावास्या' को रोहिणी-रूपा भगवती लक्ष्मी का आगमन होता है। कार्तिक अमावास्या को कन्या राशि का सूर्य रहता है। कन्या राशि का सूर्य 'नीच' कहलाता है। इस दिन सूर्य-प्रकाश अर्थात् सौर प्रकाश मलिन रहता है। रात्रि में तो वह भी नहीं रहता। अमावास्या के कारण रात्रि में चन्द्र-ज्योति भी नहीं रहती। चार मास की वृष्टि से प्रकृति की प्राण-मयी अग्नि-ज्योति भी निष्प्रभ रहती है। अतएव इन दिनों में ज्योतियों का अभाव रहता है तथा ज्योतिर्मय आत्मा वीर्य-हीन रहती है।

उक्त तम-भाव के निराकरण के लिए तथा भगवती लक्ष्मी देवी के शुभागमन के उपलक्ष्य में **'दीपावली'-महोत्सव** मनाया जाता है। तभी इस दिन दीप-प्रकाश एवं अग्नि-क्रीड़ा करने का आदेश हमारे दूरदर्शी ऋषियों ने दे रखा है। ऐश्वर्य की इच्छा रखनेवाले प्रत्येक मानव को कार्त्तिक कृष्णा चतुर्दशी को रात्रि में, जिसे **'काल-रात्रि'** कहते हैं, **भगवती धूमावती** अर्थात् **भगवती ज्येष्ठा** लक्ष्मी की तथा कार्त्तिक अमावास्या को **भगवती महा-लक्ष्मी** की पूजा-स्तुति करनी चाहिए।

हिन्दू धर्म-शास्त्रों में जीवन - संस्कार के लिए सभी पर्वों को दो भावों में आँका गया है- १ स्थूल (बहिरङ्ग) और २ सूक्ष्म (अन्तरङ्ग)। यही कारण है कि हिन्दुओं के सभी धार्मिक त्योहारों— महोत्सवों में दो भाव निहित रहते हैं।

'दीपावली' के महोत्सव पर मकानों को झाड़-बुहार कर, लीप-पोत कर साफ करना तथा उन्हें नाना प्रकार के अलङ्कारों से सुसज्जित करना, रात्रि में दीप - मलिकाओं द्वारा घरों-दूकानों को देदीप्यमान करना, गन्ध-अक्षत-पुष्प,धूप-दीप-नवैद्य द्वारा महा-लक्ष्मी का पूजन करना, अग्नि - क्रीड़ा करना — ये सब बातें स्थूल भाव में सन्निहित हैं।

अब आइए सूक्ष्म भाव की ओर। यह मनुष्य - शरीर एक सुन्दर भवन — 'देव-मन्दिर' है। इस देह-रूपी 'मन्दिर' में 'आत्मा-रूपी' देवता को आच्छादित करते हुए अज्ञान-रूपी अन्धकार छाया हुआ है। **'दीपावली' का महोत्सव यह सूचित करता है कि हमें 'अज्ञान-रूपी' अन्धकार को 'ज्ञान-रूपी' दीपक जलाकर हटाना चाहिए।** तात्पर्य यह है कि इस अन्तरङ्ग भाव के अनुसार **साधकों को चाहिए कि वे 'दीपावली' के दिन विशेष रूप से जप-ध्यान, पाठ-पूजा कर अपने हृदय में ज्ञान-रूपी दीपक जलाकर अज्ञान-रूपी अन्धकार को दूर करें तथा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करें।**

★ ★ ★

रजि० सं० ए० डी० ६१ अक्टूबर, २००० रजि० सं० ३२६८१/५७

जगन्माता श्रीज्वाला-मुखी

ॐ ज्वालां पर्वत-संस्थितां त्रि-नयनां पीठ-त्रयाधिष्ठिताम्।
ज्वालाडम्बर-भूषितां सु-वदनां नित्यां सुदृश्यां जनैः।।
षट्-चक्राम्बुज-मध्यगां वर-शराम्भोजाभयान् बिभ्रतीम्।
चिद्रूपां सकलार्थ-दीपन-करीं ज्वाला-मुखीं नौम्यहम्।।

सम्पादक/प्रकाशक/मुद्रक : श्री ऋतशील शर्मा, चण्डी-धाम, प्रयागराज-६ ✆ : ५०२७८३